



॥ श्री वीतरागाय नमः ॥

सामायिक सूत्र

१—नमस्कार मन्त्र

णमो अरिहंताणं । णमो सिद्धाणं । णमो आयरियाणं । णमो
उत्तञ्जायाणं । णमो लोण सन्धसाहूणं ।

एसो पंच णमुक्कारो, सन्धपावप्पणासणो ।

मंगलाण च सन्धेमि, पढमं हवउ मंगलं ॥ १ ॥

(भगवती सूत्र मङ्गलाचरण) (कल्पसूत्र मङ्गलाचरण)

२—गुरुवन्दना-तिक्खुत्तो का पाठ ।

तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं (करेमि) वंढामि णमंसामि
सत्तकारेमि सम्माणेमि कल्लाणं मंगलं देवयं चेश्यं पज्जुवासामि +
सत्थएण वंढामि । (रायप्पणेणी सूत्र ८)

३—इरियावहियं (इच्छाकारेणं) का पाठ

इच्छाकारेणं संदिसह भगवं ! इरियावहियं पटिक्कमामि, इच्छं
इच्छामि पडिक्कमिडं इरियावहियाण विराहणाण गमणागमणे.

+ रायप्पणेणी सूत्र में 'सम्माण वंढामि' यह पाठ नहीं है । किन्तु परम्परा की
कारणा और पंचलिख परिपाटी के अनुसार यह पाठ यहाँ दिया गया है ।

इच्छं 'इच्छामि मे मिच्छामि दुग्घटं नरु वा पाठ आवश्यक में है ।

पाणक्कमणे, वीयक्कमणे, हरियक्कमणे, ओसा उत्तिग पणग दग मट्टी मक्कडा संताणा संकमणे जे मे जीवा विराहिया एगिंदिया, वेइंदिया, तेइंदिया, चउरिंदिया, पंचिंदिया, अभिहया, वत्तिया, लेसिया, संघाइया, संघट्टिया, परियाविया, किलामिया, उद्विया, ठाणाओ ठाणं संकामिया, जीवियाओ ववरोविया तस्स मिच्छामि दुक्कडं ।

(हरिभद्रीयावश्यक पृ० ५७२)

४—तस्स उत्तरी का पाठ

तस्स उत्तरीकरणेणं, पायच्छित्तकरणेणं, विसोहिकरणेणं, विसल्लीकरणेणं, पावाणं कम्माण निग्घायणट्ठाए ठामि काउस्सगं । अण्णत्थ ऊसमिणं, नीससिणं, स्वासिणं, छीणं, जंभाइणं, उड्डुणं, वायनिसग्गेणं, भमलीए, पित्तमुच्छ्राए, सुहुमेहिं अंगसंचालेहिं, सुहुमेहिं खेलसंचालेहिं, सुहुमेहिं दिट्ठिसंचालेहिं, एवमाइएहिं आगारेहिं अभग्गो अविराहिओ हुज्ज मे काउस्सग्गो, जाव अरिहंताणं भगवंताणं णमुक्कारेणं न पारेमि ताव कायं ठाणेणं मोणेण म्हाणेणं अप्पाणं वोसिरामि ।

(हरिभद्रीयावश्यक पृ० ७७८)

५—लोगस्स का पाठ

लोगस्स उज्जोयगरे, धम्मतित्थयरे जिणे ।
 अरिहंते कित्तइस्सं, चउवीसंपि केवली ॥ १ ॥
 उसभमजियं च वन्दे, संभवमभिणंदणं च सुमडं च ।
 पउमप्पहं सुपासं, जिणं च चंदप्पहं वन्दे ॥ २ ॥
 सुविहिं च पुप्फदंतं, सीयलसिज्जंसवासुपुज्जं च ।
 विमलमणंतं च जिणं, धम्मं संतिं च वंदामि ॥ ३ ॥

कुंथं अरं च मङ्गि वंदे, मुणिसुव्वयं नमि जिणं च ।
 वंदामि रिद्धेनेमि, पासं तह वद्धमाणं च ॥ ४ ॥
 एवं मण अभियुआ, विहूयरयमला पहीणजरमरणा ।
 चउवीसंपि जिणवरा, तित्थयरा मे पसीयंतु ॥ ५ ॥
 कित्थियवंदियमहिया, जे ण लोगस्स उत्तमा सिद्धा ।
 आरुग्गवोहिलाभं, समाहिवरमुत्तमं दित्तु ॥ ६ ॥
 चंदेसु निम्मलयर, आइच्चेसु अहियं पयासयर ।
 सागरवरगंभीरा, सिद्धा सिद्धि मम दिसंतु ॥ ७ ॥

(हरिभद्रोपावश्यक पृ० ४६३-५०६)

६—करेमि भंते का पाठ

करेमि भंते ! मामाइयं, सावज्जं, जोगं पच्चफ्फवामि ज्ञावनियमं
 पज्जुवासामि, दुविहं तिविहेणं न करेमि, न कारवेमि, मणसा
 वयसा कायसा तस्स भंते । पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं
 वोसिरामि ॥
 (हरिभद्रोपावश्यक पृ० ४५४)

७—णमोत्थुणं का पाठ

णमोत्थुणं अरिहंताणं भगवंताणं आइगराणं तित्थयराणं
 मयंसंवुद्धाणं, पुरिसुत्तमाणं पुरिससीहाणं पुरिसवरपुण्डरीयाणं
 पुरिसवरगंधहत्थीणं लोगुत्तमाणं लोगणाहाणं लोगहिआणं लोगपईवाण
 गेगपज्जोअगराण अमयदयाण चक्खुदयाणं मग्गदयाणं सरणदयाणं
 जीवदयाणं चोहिदयाणं धम्मदयाणं धम्मदेसयाणं धम्मनायगाणं
 धम्मसारहीणं धम्मवरचाउरंतचक्कवट्टीणं दीवो ताणं सरण
 गट्ठं पइदा अप्पहिहयधरणाणदंसणधराणं विअट्टइउमाणं जिणाणं

जावयाणं तिण्णाणं तारयाणं बुद्धाण वोहयाण मुत्ताणं मोअगाण,
सव्वण्णूणं, सव्वदरिसीण, सिवमयल मरुअ मणंत मक्खवय मव्वावाह
मपुणरावित्ति सिद्धिगइनामघेयं ठाणं संपत्ताणं नमो जिणाणं
जिअभयाण ॥ (ओपपातिक सूत्र १२) (कल्पसूत्र शकस्तव)

८—सामायिक पारने का पाठ

एयस्स नवमस्स सामाइयवयस्स पंच अइयारा जाणियव्वा न
समायरियव्वा, तंजहा ते आलोडं-मणदुप्पणिहाणे, वयदुप्पणिहाणे,
कायदुप्पणिहाणे, सामाइयस्स सइ अकरणया, सामाइयस्स अणवट्ठि-
यस्स करणया तस्स मिच्छामि दुक्कडं ॥ (हरिमद्रीयावश्यक पृ० ८३१)

सामाइयं सम्मं काएण न फासियं, न पालियं, न तीरियं, न
किट्ठियं, न सोहियं, न आराहियं, आणाए अणुपालियं न भवइ तस्स
मिच्छामि दुक्कडं ।

सामायिक मे दस मन के, दस वचन के, वारह काया के इन कुल
वत्तीस दोषों में से कोई दोष लगा हो तो तस्स मिच्छामि दुक्कडं ।

सामायिक मे ॐ स्त्रीकथा, भक्तकथा, देशकथा, राजकथा, इन चार
कथाओं मे से कोई कथा की हो तो तस्स मिच्छामि दुक्कडं ।

सामायिक में आहार संज्ञा, भयसंज्ञा, मैथुनसंज्ञा, परिग्रहसंज्ञा,
इन चार संज्ञाओं मे से किसी संज्ञा का सेवन किया हो तो तस्स
मिच्छामि दुक्कडं ।

सामायिक में अतिक्रम, व्यतिक्रम, अतिचार, अनाचार जानते
अजानते मन वचन काया से कोई दोष लगा हो तो तस्स मिच्छामि
दुक्कडं ।

सामायिक व्रत विधि से लिया, विधि से पूर्ण किया, विधि में कोई अविधि हुई हो तो तस्स मिच्छामि दुक्कडं।

सामायिक का पाठ बोलने में काना, मात्रा, अनुस्वार, पद, अक्षर, ह्रस्व, दीर्घ, न्यूनाधिक, विपरीत पढ़ने में आया हो तो अनन्त सिद्ध केवली भगवान् की साक्षी से तस्स मिच्छामि दुक्कडं।

सामायिक लेने की विधि

सर्व प्रथम स्थान, आसन, पूँजनी, मुखवस्त्रिका आदि की पहिले-हणा करना। फिर यत्रा पूर्वक स्थान पूँज कर आसन विछाना। वाद में आसन छोड़ कर पूर्व या उत्तर दिशा की ओर मुँह कर के दोनों हाथ जोड़ कर पंचांग नमा कर 'तिक्खुत्तो' के पाठ से तीन बार विधि पूर्वक वंदना करना और श्री सीमंधर स्वामी या अपने धर्माचार्यजी (गुरुदेव) की आज्ञा लेकर 'नमस्कार मंत्र', 'इच्छा कारेण' और 'तस्स उत्तरी' का पाठ बोल कर काउस्सग्ग करना। काउस्सग्ग में 'इच्छाकारेण' का पाठ मन में कहना। पाठ के अन्त में 'तस्स मिच्छामि दुक्कडं' के स्थान पर 'तस्स आलोउ' कहना और 'णमो अरिहंताणं' कह कर काउस्सग्ग पारना। बादमें 'नमस्कार मंत्र', 'ध्यान का पाठ' (काउस्सग्ग में आत्तध्यान रौद्रध्यान ध्याया हो, धर्मध्यान न ध्याया हो, काउस्सग्ग में मन वचन काया चलित हुए हों तो तस्म मिच्छामि दुक्कडं) और 'लोगम्म' का पाठ रहना। फिर 'करेमि भन्ते' के पाठ से सामायिक लेना। 'करेमि भन्ते' के पाठ में जहां 'जाव नियमं' शब्द आता है वही जितनी ॐ नामायिक लेनी हो उतनी सामायिक लेकर आगे का पाठ

ॐ नामायिक का पाठ एक मुहूर्त यानी अठ्ठावीस मिनटका होता है।

समाप्त करना । बाद में नीचे बैठ कर वायाँ घुटना खड़ा रख कर दो बार 'णमोत्थुणं' का पाठ बोलना । दूसरी बार 'णमोत्थुणं' का पाठ बोलने के समय "ठाणं संपत्ताणं" के बदले 'ठाण संपाविड कामाण' बोलना ।

सामायिक में नया ज्ञान सीखना सीखे हुए ज्ञान, थोकड़ा, बोल आदि चितारना, स्वाध्याय करना, परमात्मा के स्तवन, प्रार्थना, स्तोत्र, स्तुति आदि बोलना, माला फेरना आदि ज्ञान ध्यान करना, आशय यह है कि सामायिक का काल प्रमाद रहित हो कर ज्ञान ध्यान चिन्तन मनन में बिताना चाहिए । सन्त मुनिराज विराजते हों तो उनकी ओर पीठ करके नहीं बैठना चाहिए । स्वाध्याय, व्याख्यान या उपदेश दे रहे हों तो उसमें उपयोग रखना चाहिए । सामायिक में विकार जनक उपकरण नहीं रखना चाहिए । सामायिक के ३२ दोषों का सेवन न करना चाहिए ।

सामायिक पारने की विधि

सामायिक पारने के समय 'नमस्कार मंत्र', 'इच्छाकारेणं' और 'तस्स उत्तरी' का पाठ बोल कर काउत्सग करना । काउत्सग में दो बार 'लोगस्स' का पाठ मन में कहना और 'णमो अरिहंताणं' कह कर काउत्सग पारना । फिर 'नमस्कार मंत्र', 'ध्यान का पाठ' और 'लोगस्स' का पाठ प्रगट कहना । बाद में वायाँ घुटना खड़ा रख कर ऊपर लिखे अनुसार दो बार 'णमोत्थुणं' का पाठ बोलना । फिर 'एयस्स नवमस्स' आदि सामायिक पारने का पूरा पाठ बोल कर अन्त में तीन बार 'नमस्कार मंत्र' गिन कर सामायिक पारना ।

॥ इति सामायिक सूत्र समाप्तम् ॥

४

बोल चौथा : इन्द्रिय पांच

- | | |
|--------------------|------------------|
| १ श्रोत्र इन्द्रिय | ३ घ्राण इन्द्रिय |
| २ चक्षुष् इन्द्रिय | ४ रसन इन्द्रिय |
| ५ स्पर्शन इन्द्रिय | |

★

५

बोल पाँचवाँ : पर्याप्ति छह

- | | |
|-----------------|-----------|
| १ आहार | पर्याप्ति |
| २ शरीर | पर्याप्ति |
| ३ इन्द्रिय | पर्याप्ति |
| ४ श्वानोच्छ्वास | पर्याप्ति |
| ५ भाषा | पर्याप्ति |
| ६ मन. | पर्याप्ति |

★

६

बोल छठा : प्राण दश

- | | |
|--------------------|----------|
| १ श्रोत्र इन्द्रिय | बल प्राण |
| २ चक्षुष् इन्द्रिय | बल प्राण |

- | | | |
|----|------------------|----------|
| ३ | घ्राण इन्द्रिय | बल प्राण |
| ४ | रसन इन्द्रिय | बल प्राण |
| ५ | स्पर्शन इन्द्रिय | बल प्राण |
| ६ | मनो - | बल प्राण |
| ७ | वचन | बल प्राण |
| ८ | काय | बल प्राण |
| ९ | श्वासोच्छ्वास- | बल प्राण |
| १० | आयुष्य | बल प्राण |

★

७

बोद्ध सातवॉ : शरीर पांच

- | | | |
|---|---------|------|
| १ | औदारिक | शरीर |
| २ | वैक्रिय | शरीर |
| ३ | आहारक | शरीर |
| ४ | तैजस | शरीर |
| ५ | कार्मण | शरीर |

★

बील आठवाँ : योग पन्द्रह

चार मन के

- १ सत्य मनो - योग
- २ असत्य मनो - योग
- ३ मिश्र मनो - योग
- ४ व्यवहार मनो - योग

चार वचन के

- १ सत्य वचन - योग
- २ असत्य वचन - योग
- ३ मिश्र वचन - योग
- ४ व्यवहार वचन- योग

मात काय के

- १ औदारिक काय - योग
- २ औदारिक-मिश्र काय - योग
- ३ वैक्रिय काय - योग
- ४ वैक्रिय-मिश्र काय - योग
- ५ आहारक काय - योग
- ६ आहारक-मिश्र काय - योग
- ७ कर्मण काय - योग



बोल् नौवाँ • उपयोग वारह

पाँच ज्ञान

- | | | | |
|---|-------------|------------|-------------------|
| १ | मति ज्ञान | ३ | अवधि ज्ञान |
| २ | श्रुत ज्ञान | ४ | मन. पर्यायि ज्ञान |
| | ५ | केवल ज्ञान | |

तीन अज्ञान

- | | |
|---|---------------------------|
| १ | मति अज्ञान |
| २ | श्रुत अज्ञान |
| ३ | अवधि अज्ञान (विभंग ज्ञान) |

चार दर्शन

- | | | | |
|---|----------------|---|------------|
| १ | चक्षुर् दर्शन | ३ | अवधि दर्शन |
| २ | अचक्षुर् दर्शन | ४ | केवल दर्शन |



बौद्ध आठवाँ : योग पन्द्रह

चार मन के

- १ नन्य मनो - योग
- २ असत्य मनो - योग
- ३ मिश्र मनो - योग
- ४ व्यवहार मनो - योग

चार वचन के

- १ सत्य वचन - योग
- २ असत्य वचन - योग
- ३ मिश्र वचन - योग
- ४ व्यवहार वचन- योग

सात काय के

- १ औदारिक काय - योग
- २ औदारिक-मिश्र काय - योग
- ३ वैक्रिय काय - योग
- ४ वैक्रिय-मिश्र काय - योग
- ५ आहारक काय - योग
- ६ आहारक-मिश्र काय - योग
- ७ कामंश काय - योग



बोले नौवाँ : उपयोग वारह

पाँच ज्ञान

- | | | | |
|---|-------------|------------|------------------|
| १ | मति ज्ञान | ३ | अवधि ज्ञान |
| २ | श्रुत ज्ञान | ४ | मन. पर्याय ज्ञान |
| | ५ | केवल ज्ञान | |

तीन अज्ञान

- | | |
|---|--------------------------|
| १ | मति अज्ञान |
| २ | श्रुत अज्ञान |
| ३ | अवधि अज्ञान (विभग ज्ञान) |

चार दर्शन

- | | | | |
|---|----------------|---|------------|
| १ | चक्षुर् दर्शन | ३ | अवधि दर्शन |
| २ | अचक्षुर् दर्शन | ४ | केवल दर्शन |



त्रोल दशवो : कर्म आठ

१	जानावरण	कर्म
२	दर्शनावरण	कर्म
३	वेदनीय	कर्म
४	मोहनीय	कर्म
५	आयुष्	कर्म
६	नाम	कर्म
७	गोत्र	कर्म
८	अन्तराय	कर्म



त्रोल ग्यारहवो : गुण-स्थान चौदह

१	मिथ्या दृष्टि	गुण स्थान
२	मास्वादन सम्यग्दृष्टि	गुण स्थान
३	सम्यग्-मिथ्यादृष्टि	गुण स्थान
४	अविरत सम्यग्दृष्टि	गुण स्थान
५	देग-विरत	गुण स्थान
६	प्रमत्त मयत	गुण स्थान

७	अप्रमत्त सयत	गुण स्थान
८	निवृत्ति वादर-सम्पराय	गुण स्थान
९	अनिवृत्ति वादर-सम्पराय	गुण स्थान
१०	सूक्ष्म-सम्पराय	गुण स्थान
११	उपशान्त-मोह	गुण स्थान
१२	क्षीण-मोह	गुण स्थान
१३	सयोगी केवली	गुण स्थान
१४	अयोगी केवली	गुण स्थान



१२

बोले बररहचॉ : पॉच इन्द्रियों के तेईस विषय

श्रोत्र इन्द्रिय के तीन विषय

- | | | | |
|---|----------|------------|-----------|
| १ | जीव शब्द | २ | अजीव शब्द |
| | ३ | मिश्र शब्द | |

चक्षुष् इन्द्रिय के पाच विषय

- | | | | |
|---|------------|------------|-----------|
| १ | कृष्ण वर्ण | ३ | रक्त वर्ण |
| २ | नील वर्ण | ४ | पीत वर्ण |
| | ५ | श्वेत वर्ण | |

घ्राण इन्द्रिय के दो विषय

- | | | | |
|---|--------|---|----------|
| १ | सुगन्ध | २ | दुर्गन्ध |
|---|--------|---|----------|

रसन इन्द्रिय के पाच विषय

१ अम्ल रस	३ कटु रस
२ मधुर रस	४ कषाय रस
५ तिक्त रस	

स्पर्शन इन्द्रिय के आठ विषय

१ शीत स्पर्श	५ लघु स्पर्श
२ उष्ण स्पर्श	६ गुरु स्पर्श
३ रुक्ष स्पर्श	७ मृदु स्पर्श
४ स्निग्ध स्पर्श	८ कर्कश स्पर्श

★

१३

बौल तेरहवों : दश प्रकार का मिथ्यात्व

१	जीव को	अजीव	समझना	मिथ्यात्व
२	अजीव को	जीव	समझना	मिथ्यात्व
३	धर्म को	अधर्म	समझना	मिथ्यात्व
४	अधर्म को	धर्म	समझना	मिथ्यात्व
५	साधु को	असाधु	समझना	मिथ्यात्व
६	असाधु को	साधु	समझना	मिथ्यात्व

- ७ ससारमार्ग को मोक्षमार्ग समझना मिथ्यात्व
 ८ मोक्षमार्ग को ससारमार्ग समझना मिथ्यात्व
 ९ मुक्त को अमुक्त समझना मिथ्यात्व
 १० अमुक्त को मुक्त समझना मिथ्यात्व

★

१४

बौल चौदहवों : नव तत्त्व के ११५ भेद

नव तत्त्व

- | | |
|----------------|------------------|
| १ जीव तत्त्व | ५ आस्रव तत्त्व |
| २ अजीव तत्त्व | ६ सवर तत्त्व |
| ३ पुण्य तत्त्व | ७ निर्जरा तत्त्व |
| ४ पाप तत्त्व | ८ बन्ध तत्त्व |
| ९ मोक्ष तत्त्व | |

जीव तत्त्व के चौदह भेद

- | |
|--------------------------------|
| १ सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त |
| २ सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त |
| ३ वादर एकेन्द्रिय पर्याप्त |

रसन इन्द्रिय के पाच विषय

१	अम्ल रस	३	कटु रस
२	मधुर रस	४	कपाय रस
	५	तिक्त रस	

स्पर्शन इन्द्रिय के आठ विषय

१	शीत स्पर्श	५	लघु स्पर्श
२	उष्ण स्पर्श	६	गुरु स्पर्श
३	रूक्ष स्पर्श	७	मृदु स्पर्श
४	स्निग्ध स्पर्श	८	कार्कश स्पर्श

★

१३

चौल तेरहवों : दश प्रकार का मिथ्यात्व

१	जीव को	अजीव	समझना	मिथ्यात्व
२	अजीव को	जीव	समझना	मिथ्यात्व
३	धर्म को	अधर्म	समझना	मिथ्यात्व
४	अधर्म को	धर्म	समझना	मिथ्यात्व
५	साधु को	असाधु	समझना	मिथ्यात्व
६	असाधु को	साधु	समझना	मिथ्यात्व

- ७ ससारमार्ग को मोक्षमार्ग समझना मिथ्यात्व
 ८ मोक्षमार्ग को ससारमार्ग समझना मिथ्यात्व
 ९ मुक्त को अमुक्त समझना मिथ्यात्व
 १० अमुक्त को मुक्त समझना मिथ्यात्व

★

१४

बोले चौदहवों : नव तत्त्व के ११५ भेद

नव तत्त्व

- | | |
|----------------|------------------|
| १ जीव तत्त्व | ५ आस्रव तत्त्व |
| २ अजीव तत्त्व | ६ सवर तत्त्व |
| ३ पुण्य तत्त्व | ७ निर्जरा तत्त्व |
| ४ पाप तत्त्व | ८ बन्ध तत्त्व |
| ९ मोक्ष तत्त्व | |

जीव तत्त्व के चौदह भेद

- | |
|---------------------------------|
| १ सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त |
| २ सूक्ष्म एकेन्द्रिय - पर्याप्त |
| ३ वादर एकेन्द्रिय - पर्याप्त |

४	वादर एकेन्द्रिय	अपर्याप्त
५	द्वीन्द्रिय	पर्याप्त
६	द्वीन्द्रिय	अपर्याप्त
७	त्रीन्द्रिय	पर्याप्त
८	त्रीन्द्रिय	अपर्याप्त
९	चतुरिन्द्रिय	पर्याप्त
१०	चतुरिन्द्रिय	अपर्याप्त
११	असंजी पञ्चेन्द्रिय	पर्याप्त
१२	असंजी पञ्चेन्द्रिय	अपर्याप्त
१३	संजी पञ्चेन्द्रिय	पर्याप्त
१४	संजी पञ्चेन्द्रिय	अपर्याप्त

अजोव तत्त्व के चौदह भेद

धर्मास्तिकाय के तीन भेद

१	स्कन्ध	२	देश
		३	प्रदेश

अधर्मास्तिकाय के तीन भेद

१	स्कन्ध	२	देश
		३	प्रदेश

आकाशास्ति काय के तीन भेद

- १ स्कन्ध ३४२६२ देश
३ प्रदेश

१ दशवा काल

पुद्गलास्ति काय के चार भेद

- १ स्कन्ध ३ प्रदेश
२ देश ४ परमाणु

पुण्य तत्त्व के नव भेद

- १ अन्न पुण्य ५ वस्त्र पुण्य
२ पान पुण्य ६ मन पुण्य
३ स्थान पुण्य ७ वचन पुण्य
४ शय्या पुण्य ८ काय पुण्य
९ नमस्कार पुण्य

पाप तत्त्व के अठारह भेद

- १ प्राणातिपात ४ मैथुन
२ मृपावाद ५ परिग्रह
३ अदत्तादान ६ क्रोध

७	मान	१३	अभ्याख्यान
८	माया	१४	पैशुन्य
९	लोभ	१५	पर-परिवाद
१०	राग	१६	रति-अरति
११	द्वेष	१७	मायामृपा
१२	कलह	१८	मिथ्यादर्शन

आस्रव तत्त्व के बीस भेद

पाच अव्रत

१	प्राणातिपात	३	अदत्तादान
२	मृपावाद	४	मैथुन
	५		परिग्रह

पांच इन्द्रिय

१	श्रोत्र	इन्द्रिय - प्रवृत्ति
२	चक्षुष्	इन्द्रिय - प्रवृत्ति
३	घ्राण	इन्द्रिय - प्रवृत्ति
४	रसन	इन्द्रिय - प्रवृत्ति
५	स्पर्शन	इन्द्रिय - प्रवृत्ति

पाच आस्रव

- १ मिथ्यात्व आस्रव
- २ अविरति आस्रव
- ३ प्रमाद आस्रव
- ४ कपाय आस्रव
- ५ अशुभ योग आस्रव

तीन योग

- १ मन - प्रवृत्ति
- २ वचन - प्रवृत्ति
- ३ काय - प्रवृत्ति

दो अयतना

- १ भाण्डोपकरण, अयतना से लेना, रखना ।
- २ सूत्रि कुशाग्रमात्र, अयतना से लेना, रखना ।

संवर तत्त्व के बीस भेद

पाच व्रत

- १ प्राणातिपात - विरमण
- २ मृषावाद - विरमण

- ३ अदत्तादान - विरमण
 ४ अन्नह्यचर्य - विरमण
 ५ परिग्रह - विरमण

पाच इन्द्रिय

- १ श्रोत्र इन्द्रिय - निग्रह
 २ चक्षुष् इन्द्रिय - निग्रह
 ३ घ्राण इन्द्रिय - निग्रह
 ४ रसन इन्द्रिय - निग्रह
 ५ स्पर्शन इन्द्रिय - निग्रह

पाच सवर

- १ सम्यक्त्व सवर
 २ विरति सवर
 ३ अप्रमाद सवर
 ४ अकपाय सवर
 ५ शुभ योग संवर

तीन योग

- १ मनो - निग्रह
 २ वचन - निग्रह
 ३ काय - निग्रह

दो यतना

- १ भाण्डोपकरण, यतना से लेना, रखना ।
- २ सूचि कुशाग्र मात्र, यतना से लेना, रखना ।

निर्जरा तत्त्व के वारह भेद

- १ अन तप
- २ ऊनोदरी तप
- ३ भिक्षाचरी तप
- ४ रस-परित्याग तप
- ५ काय क्लेश तप
- ६ प्रति सलीनता तप

- ७ प्रायश्चित्त तप
- ८ विनय तप
- ९ वैयावृत्य तप
- १० स्वाध्याय तप
- ११ ध्यान तप
- १२ व्युत्सर्ग तप

बन्ध तत्त्व के चार भेद

- १ प्रकृति बन्ध
- २ स्थिति बन्ध

त्रोल सोलहवाँ : दण्डक चौबीस

सात नरक का एक दण्डक

१	रत्न	प्रभा
२	शर्करा	प्रभा
३	वालुका	प्रभा
४	पङ्क	प्रभा
५	धूम	प्रभा
६	तमः	प्रभा
७	महातम	प्रभा

दश भवन-पति के दश दण्डक

१	असुर	कुमार
२	नाग	कुमार
३	मुपर्ण	कुमार
४	विद्युत्	कुमार
५	अग्नि	कुमार
६	द्वीप	कुमार
७	उदधि	कुमार
८	दिशा	कुमार

- ६ पवन कुमार
 १० स्तनित कुमार

पाच स्थावर के पाच दण्डक

- १ पृथ्वी काय
 २^१ अप् काय
 ३ तेजस् काय
 ४ वायु काय
 ५ वनस्पति काय

तीन विकलेन्द्रिय के तीन दण्डक

- १ द्वीन्द्रिय
 २ त्रीन्द्रिय
 ३ चतुरिन्द्रिय

अन्तिम पाच दण्डक

- १ तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रिय का एक दण्डक
 १ मनुष्य का एक दण्डक
 १ व्यन्तर देव का एक दण्डक
 १ ज्योतिष देव का एक दण्डक
 १ वैमानिक देव का एक दण्डक

★

१७

बील सतरहवाँ : लेश्या छह

- १ कृष्ण लेश्या
- २ नील लेश्या
- ३ कापोत लेश्या
- ४ तेजो - लेश्या
- ५ पद्म लेश्या
- ६ गुक्ल लेश्या

★

१८

बील अठारहवाँ : दृष्टि तीन

- १ सम्यग्दृष्टि
- २ मिथ्यादृष्टि
- ३ मिश्र दृष्टि

★

बौल उन्नीमवॉ : ध्यान चार

- १ आर्त ध्यान
- २ रौद्र ध्यान
- ३ धर्म ध्यान
- ४ शुक्ल ध्यान

✽

२०

बौल त्रीमवॉ - षड् द्रव्य के तीस भेद

धर्मास्तिकाय के पांच बौल

- १ द्रव्य मे एक
- २ क्षेत्र मे लोक-प्रमाण
- ३ काल से आदि-अन्त-रहित
- ४ भाव से वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श-रहित,
अरूपी, अजीव, शाश्वत, लोक-व्यापी ।
- ५ गुण से चलन गुण,
जल मे मच्छनी का दृष्टान्त .

अधर्मास्ति काय के पांच बौल

- १ द्रव्य से एक
- २ क्षेत्र से लोक-प्रमाण

- ३ काल से आदि-अन्त-रहित
- ४ भाव से वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श-रहित,
अरूपी, अजीव, शाश्वत, लोक-व्यापी,
- ५ गुण से स्थिर गुण,
श्रान्त पथिक को छाया का दृष्टान्त

आकाशास्ति काय के पाच बोल

- १ द्रव्य से एक
- २ क्षेत्र से लोकालोक-प्रमाण
- ३ काल से आदि-अन्त-रहित
- ४ भाव से वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श-रहित,
अरूपी, अजीव, शाश्वत, लोका-लोक-व्यापी,
- ५ गुण से अवकाश-दान गुण,
दूध में बत्ताशे का दृष्टान्त

काल द्रव्य के पाच बोल

- १ द्रव्य से एक
- २ क्षेत्र में अढाई द्वीप प्रमाण
- ३ काल से आदि-अन्त-रहित
- ४ भाव में वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श-रहित,
अरूपी, अजीव, शाश्वत, अढाई द्वीप-वर्ती

- ५ गुण से वर्तना गुण,
नये को पुराना करे,
नये पुराने कपड़े का दृष्टान्त

जीवाम्स्तिकाय के पाच बोल

- १ द्रव्य से अनन्त
२ क्षेत्र से लोक-प्रमाण
३ काल से आदि-अन्त-रहित
४ भाव से वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श-रहित,
अरुपी, जीव, शाश्वत, लोकवर्ती
५ गुण से उपयोग गुण,
चन्द्र की कला का दृष्टान्त

पुद्गलास्तिकाय के पाच बोल

- १ द्रव्य से अनन्त
२ क्षेत्र से लोक-प्रमाण
३ काल से आदि-अन्त रहित
४ भाव से वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श-रहित
रूपी, अजीव, शाश्वत, लोकवर्ती
५ गुण से पूरण-गतन-गुण,
मिलते-विग्ररते बादल का दृष्टान्त

बोल इक्कीमवों : राशि दो

- १ जीव राशि
- २ अजीव राशि

✱

बोल चारिसवों : श्रावक के चारह व्रत

पाच अणुव्रत

- | | | |
|---|------------|----------|
| १ | अहिंसा | अणु व्रत |
| २ | सत्य | अणु व्रत |
| ३ | अस्तेय | अणु व्रत |
| ४ | ब्रह्मचर्य | अणु व्रत |
| ५ | अपरिग्रह | अणु व्रत |

तीन गुण व्रत

- १ दिशा व्रत
- २ भोगोपभोग-परिमाण व्रत
- ३ अनर्थ-दण्ड-विरमण व्रत

चार शिक्षा व्रत

- १ सामायिक व्रत
- २ देशावकाशिक व्रत
- ३ पौषध व्रत
- ४ अतिथि सविभाग व्रत

★

२३

बौद्ध तर्कियों : माधु के पाँच महाव्रत

- १ अहिंसा महाव्रत
- २ सत्य महाव्रत
- ३ अस्तेय महाव्रत
- ४ ब्रह्मचर्य महाव्रत
- ५ अपरिव्रत महाव्रत

★

२४

बौद्ध चौबीसों : प्रत्याख्यान के ४६ गंग

- अंक १५ मग नव—एक कारण, एक योग से कथन
- | | | | |
|---|----|-------|--------|
| १ | कर | नहीं, | मन से |
| २ | कर | नहीं, | वचन से |
| ३ | कर | नहीं, | काय से |

- ४ कराऊँ नहीं, मन से
 ५ कराऊँ नहीं, वचन से
 ६ कराऊँ नहीं, काय से
 ७ अनुमोदूँ नहीं, मन से
 ८ अनुमोदूँ नहीं, वचन से
 ९ अनुमोदूँ नहीं, काय से

अंक १२ भग नव—एक करण दो योग से कथन

- १ करूँ नहीं, मन से, वचन से
 २ करूँ नहीं, मन से, काय से
 ३ करूँ नहीं, वचन से, काय से
 ४ कराऊँ नहीं, मन से, काय से
 ५ कराऊँ नहीं, मन से, वचन से
 ६ कराऊँ नहीं, वचन से, काय से
 ७ अनुमोदूँ नहीं, मन से, वचन से
 ८ अनुमोदूँ नहीं, मन से, काय से
 ९ अनुमोदूँ नहीं, वचन से, काय से

अंक १३ भग तीन—एक करण तीन योग से कथन

- १ करूँ नहीं, मन से, वचन से, काय से
 २ कराऊँ नहीं, मन से, वचन से, काय से
 ३ अनुमोदूँ नहीं, मन से, वचन से, काय से

- अक २१ भग नव-दो करण एक योग से कथन
- १ करूँ नहीं, कराऊँ नहीं, मन से
 - २ करूँ नहीं, कराऊँ नहीं, वचन से
 - ३ करूँ नहीं, कराऊँ नहीं, काय से
 - ४ करूँ नहीं, अनुमोदूँ नहीं, मन से
 - ५ करूँ नहीं, अनुमोदूँ नहीं, वचन से
 - ६ करूँ नहीं, अनुमोदूँ नहीं, काय से
 - ७ कराऊँ नहीं, अनुमोदूँ नहीं, मन से
 - ८ कराऊँ नहीं, अनुमोदूँ नहीं, वचन से
 - ९ कराऊँ नहीं, अनुमोदूँ नहीं, काय से

- अक २२ भग नव-दो करण दो योग से कथन
- १ करूँ नहीं, कराऊँ नहीं, मन से, वचन से
 - २ करूँ नहीं, कराऊँ नहीं, मन से, काय से
 - ३ करूँ नहीं, कराऊँ नहीं, वचन से, काय से
 - ४ करूँ नहीं, अनुमोदूँ नहीं, मन से, वचन से
 - ५ करूँ नहीं, अनुमोदूँ नहीं, मन से, काय से
 - ६ करूँ नहीं, अनुमोदूँ नहीं, वचन से, काय से
 - ७ कराऊँ नहीं, अनुमोदूँ नहीं, मन से, वचन से
 - ८ कराऊँ नहीं, अनुमोदूँ नहीं, मन से, काय से
 - ९ कराऊँ नहीं, अनुमोदूँ नहीं, मन से, वचन से

अक २३ भग तीन—दो करण तीन योग से कथन

- १ कहँ नहीं, कराऊँ नहीं,
मन से, वचन से, काय से
- २ कहँ नहीं, अनुमोडूँ नहीं,
मन मे, वचन से, काय मे
- ३ कराऊँ नहीं, अनुमोडूँ नहीं,
मन से, वचन से, काय से

अक ३१ भग तीन—तीन करण एक योग से कथन

- १ कहँ नहीं, कराऊँ नहीं, अनुमोडूँ नहीं, मन से
- २ कहँ नहीं, कराऊँ नहीं, अनुमोडूँ नहीं, वचन से
- ३ कहँ नहीं, कराऊँ नहीं, अनुमोडूँ नहीं, काय से

अक ३२ भग तीन—तीन करण दो योग से कथन

- १ कहँ नहीं, कराऊँ नहीं, अनुमोडूँ नहीं,
मन से, वचन से
- २ कहँ नहीं, कराऊँ नहीं, अनुमोडूँ नहीं,
मन से, काय से
- ३ कहँ नहीं, कराऊँ नहीं, अनुमोडूँ नहीं;
वचन से, काय से

अक ३३ भ ग एक-तीन करण, तीन योग से कथन.
१ करूँ नहीं, कराऊँ नहीं, अनुमोदूँ नहीं
मन से, वचन से, काय से

★

२५

बोल पच्चीसवाँ : चारित्र पांच

- १ सामायिक चारित्र
- २ छेदोपस्थापन चारित्र
- ३ परिहार विशुद्धि चारित्र
- ४ सूक्ष्म सपराय चारित्र
- ५ यथाख्यात चारित्र

★

पञ्चीस बोल

[व्याख्या]

बोल पहला : गति चार

- | | |
|----------------|--------------|
| १ नरक गति | ३ मनुष्य गति |
| २ तिर्यञ्च गति | ४ देव गति |

व्याख्या

संसार में अनन्त जीव है। साधारण व्यक्ति के लिए सबको जानना और वर्णन कर सकना सम्भव नहीं है। केवली-भगवान् ही अपने अनन्त ज्ञान से अनन्त जीवों को जान-देख सकते हैं। अल्पज्ञ जीव में वैसा सामर्थ्य नहीं है, कि वह ममस्त जीवों को जान सके, देख सके। क्योंकि अल्पज्ञ जीव के पास ज्ञान का साधन है—इन्द्रिय। इन्द्रियों द्वारा सूक्ष्म और अतीन्द्रिय पदार्थों को जाना नहीं जा सकता।

फिर, एक अल्पज्ञ आत्मा जीवों का परिज्ञान कैसे करे? शास्त्रकार ने इसी प्रश्न के समाधान के लिए अनन्त जीवों का चार विभागों में वर्गीकरण कर दिया है। संसार के समग्र जीव इसमें समाहित हो जाते हैं। संसारस्थ एक भी जीव ऐसा नहीं रहता जो इस बोल में न आ जाता हो।

लोक-भाषा में गति का अर्थ है—गमन, चलना-फिरना। एक स्थान से दूसरे स्थान में जाना। परन्तु यहाँ पर गति का

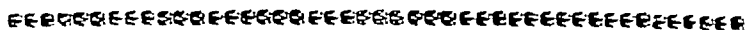


एक विशेष पारिभाषिक अर्थ ग्रहण किया गया है। एक भव से दूसरे भव की प्राप्ति को गति कहा गया है। जब एक आत्मा मनुष्य-भव के आयुष्य को पूर्ण करके देव-भव में जाने को प्रस्थान करता है तो उस क्षण से लेकर जब तक वह देव-भव में रहता है, तब तक की वह अवस्था—विशेष देव-गति कहलाती है। इसी प्रकार मनुष्य गति, तिर्यंच गति और नरक गति के विषय में भी समझ लेना चाहिए।

‘नाम-कर्म’ की उत्तर प्रकृतियों में, ‘गति-नाम’ एक प्रकृति है। उस गति-नाम कर्म के उदय से जीव कभी नरक में, कभी तिर्यञ्च में, कभी मनुष्य में और कभी देव योनि में जन्म ग्रहण करता है। अतः ये सब ससारी जीव की अशुद्ध पर्याय हैं, जो गति नाम कर्म के उदय से होती रहती हैं। शुद्ध दृष्टि से जीव, केवल शुद्ध जीव है, नारक आदि नहीं।

जैन दर्शन में, आत्मा के दो रूप माने गए हैं—मुक्त और ससारस्थ। मुक्त आत्मा वह है, जो कर्मों से रहित हो चुका है। वह शुद्ध है, निरञ्जन है, मल-रहित है। शास्त्रकार इस प्रकार की आत्मा को सिद्ध कहते हैं। जो एक बार ससार से मुक्त हो गया, वह फिर कभी ससार में नहीं आता। मुक्त एव सिद्ध आत्माएँ अनन्त हैं और अनन्त होगी।

परन्तु जो आत्माएँ अभी तक कर्म-बन्धनों में बद्ध हैं, वे अशुद्ध हैं, कर्म-सहित हैं, मल-सहित हैं। शास्त्रकार इस प्रकार की आत्माओं को ससारस्थ कहते हैं। प्रस्तुत बोल में इन्हीं ससारी आत्माओं का वर्णन किया गया है। ससारी आत्माएँ चार ही प्रकार की हो सकती हैं—नारक, तिर्यञ्च, मनुष्य और देव।



एक विशेष पारिभाषिक अर्थ ग्रहण किया गया है। एक भव से दूसरे भव की प्राप्ति को गति कहा गया है। जब एक आत्मा मनुष्य-भव के आयुष्य को पूर्ण करके देव-भव में जाने को प्रस्थान करता है तो उस क्षण से लेकर जब तक वह देव-भव में रहता है, तब तक की वह अवस्था—विशेष देव-गति कहलाती है। इसी प्रकार मनुष्य गति, तिर्यंच गति और नरक गति के विषय में भी समझ लेना चाहिए।

‘नाम-कर्म’ की उत्तर प्रकृतियों में, ‘गति-नाम’ एक प्रकृति है। उस गति-नाम कर्म के उदय से जीव कभी नरक में, कभी तिर्यञ्च में, कभी मनुष्य में और कभी देव योनि में जन्म ग्रहण करता है। अतः ये सब ससारी जीव की अशुद्ध पर्याय हैं; जो गति नाम कर्म के उदय से होती रहती है। शुद्ध दृष्टि से जीव, केवल शुद्ध जीव है, नारक आदि नहीं।

जैन दर्शन में, आत्मा के दो रूप माने गए हैं—मुक्त और ससारस्थ। मुक्त आत्मा वह है, जो कर्मों से रहित हो चुका है। वह शुद्ध है, निरञ्जन है, मल-रहित है। शास्त्रकार इस प्रकार की आत्मा को सिद्ध कहते हैं। जो एक बार ससार से मुक्त हो गया, वह फिर कभी ससार में नहीं आता। मुक्त एव सिद्ध आत्माएँ अनन्त हैं और अनन्त होगी।

परन्तु जो आत्माएँ अभी तक कर्म-बन्धनों में बद्ध हैं, वे अशुद्ध हैं, कर्म-सहित हैं, मल-सहित हैं। शास्त्रकार इस प्रकार की आत्माओं को ससारस्थ कहते हैं। प्रस्तुत बोल में इन्हीं ससारी आत्माओं का वर्णन किया गया है। ससारी आत्माएँ चार ही प्रकार की हो सकती हैं—नारक, तिर्यञ्च, मनुष्य और देव।



२

बोल दूसरा : जाति पाँच

- | | |
|---------------------|---------------------|
| १ एकेन्द्रिय जाति | ३ त्रीन्द्रिय जाति |
| २ द्वीन्द्रिय जाति | ४ चतुरिन्द्रिय जाति |
| ५ पञ्चेन्द्रिय जाति | |

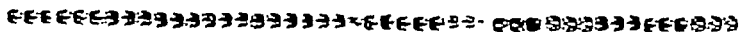
व्याख्या

जीव अनन्त हैं। वे सभी समान नहीं हैं। विकास-क्रम के आधार पर समग्र ससारी जीवों को पाँच विभागों में विभक्त किया गया है। समस्त जीवों में चैतन्य गुण समान होने पर भी उस गुण की अभिव्यक्ति में साधनमूलक इन्द्रियों के विकास-क्रम को लेकर ही समारी जीवों के यहाँ पर पाँच भेद किये गये हैं।

जाति शब्द के दो अर्थ हैं—जन्म और समूह। यहाँ पर समूह अर्थ ही ठीक बैठता है। एकेन्द्रिय जाति का अर्थ है—ऐसे प्राणियों का समूह जिनके केवल एक ही इन्द्रिय है। इसी प्रकार पञ्चेन्द्रिय जाति तक का अर्थ समझ लेना चाहिए।

इन्द्रिय शब्द का अर्थ है—ज्ञान का साधन। जिसे के द्वारा आत्मा को पदार्थों का ज्ञान होता है।

इन्द्रियाँ कितनी हैं? पाँच। कुछ लोगों की मान्यता है, कि मन भी इन्द्रिय है। फिर पाँच ही क्यों? मन इन्द्रिय अवश्य है पर वह अन्तरंग है। यहाँ पर जीवों के जो पाँच भेद किये गए हैं, वे बहिरंग इन्द्रियों के आधार पर ही किए हैं।



४

बोल चौथा : इन्द्रिय पाँच

- | | |
|-------------------|-----------------|
| १ श्रोत्रेन्द्रिय | ३ घ्राणेन्द्रिय |
| २ चक्षुरिन्द्रिय | ४ रसनेन्द्रिय |
| ५ स्पर्शनेन्द्रिय | |

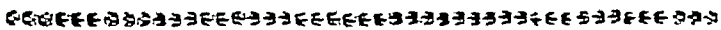
व्याख्या

समस्त ससारी जीवों में समान इन्द्रियाँ नहीं होती हैं। किसी में एक, किसी में दो, किसी में तीन, किसी में चार और किसी में पाँच। किसी जीव में पाँच से अधिक इन्द्रिय नहीं हो सकती। क्योंकि इन्द्रियाँ पाँच ही हैं। यहाँ पर इन्द्रियों के आधार पर ससारी जीवों का वर्गीकरण किया गया है।

आत्मा को इन्द्र कहते हैं, क्योंकि वह ज्ञानादि ऐश्वर्य से सम्पन्न है। इन्द्र जिस चिन्ह से जाना जाता है, अथवा जो इन्द्र के ज्ञान का साधन है, उसे इन्द्रिय कहा गया है, और वे संख्या में पाँच हैं—स्पर्शन, रसन, घ्राण, चक्षुष्, और श्रोत्र।

श्रोत्र—जिस इन्द्रिय से शब्द का ज्ञान किया जाता है, सुना जाता है, वह श्रोत्र इन्द्रिय है, अर्थात् कर्ण—Sense of hearing (Ears)

चक्षुष्—जिस इन्द्रिय से रूप का ज्ञान किया जाता है, देखा जाता है, वह चक्षुष् इन्द्रिय है, अर्थात् नेत्र—Sense of sight (Eyes)



घ्राण—जिस इन्द्रिय से गन्ध का ज्ञान किया जाता है, सूँघा जाता है, वह घ्राण इन्द्रिय है, अर्थात् नाक—Sense of smell (Nose)

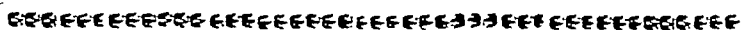
रसन—जिस इन्द्रिय से रस का ज्ञान किया जाता है, अर्थात् स्वाद लिया जाता है, वह रसन इन्द्रिय है, अर्थात् जिह्वा—Sense of test (Tongue)

स्पर्शन—जिस इन्द्रिय से स्पर्श का ज्ञान किया जाता है, वह स्पर्शन इन्द्रिय है, अर्थात् त्वचा—Sense of Touch.

इन्द्रियो की तरह मन भी ज्ञान का साधन है, फिर इस को इन्द्रिय क्यों नहीं माना गया? मन ज्ञान का साधन अवश्य है, परन्तु फिर भी रूप आदि विषयो मे प्रवृत्त होने के लिए मन को चक्षु आदि इन्द्रियो का सहारा लेना पडता है। यद्यपि मन स्वतन्त्र रूप से भी अपने चिन्त्य विषय को ग्रहण करता है, फिर भी अधिकतर मन का कार्य इन्द्रियो द्वारा गृहीत विषय का चिन्तन करना मात्र है। अतः उसे इन्द्रिय न मान कर अनिन्द्रिय (इन्द्रिय जैसा) कहा गया है।

यद्यपि मन पशु और पक्षी आदि मे भी होता है, तथापि मन की सत्र से विकसित अवस्था मनुष्य मे देखी जाती है। क्योंकि मनुष्य का नाडी-तन्त्र Nervous system दृष्ट दूसरे प्राणियो की अपेक्षा अधिक विकसित है। मनुष्य मे Mental power अन्य प्राणियों से श्रेष्ठ है।

मनोविज्ञान के अनुसार मन के तीन भाग हो सकते हैं—
चेतन मन conscious, चेतनोन्मुख Pre-conscious और अचेतन Un-conscious



मनःपर्याप्ति—जिस शक्ति के द्वारा जीव मनोयोग्य मनो-वर्गणा के पुद्गलो को ग्रहण करके मन रूप में बदलता और छोड़ता है।

किन जीवों के कितनी पर्याप्ति होती है? एकेन्द्रिय जीव के भाषा और मन को छोड़ कर शेष सभी हैं। विकलेन्द्रिय (द्वीन्द्रिय से चतुरिन्द्रिय तक) और असञ्जी पञ्चेन्द्रिय के मन को छोड़कर शेष समस्त पर्याप्ति है। सञ्जी पञ्चेन्द्रिय जीव के छहो पर्याप्ति होती हैं।

संसारि जीवों में ये पर्याप्ति कम से कम चार और अधिक से अधिक छह होती हैं। कोई भी जीव जब अपर्याप्त-दशा में मरता है, तब वह कम से कम प्रथम की तीन पर्याप्ति तो अवश्य ही पूरी करता है।

पर्याप्ति के आधार पर जीवों के दो भेद किये हैं—पर्याप्त और अपर्याप्त। जिस जीव ने स्व-योग्य पर्याप्ति को पूर्ण कर लिया है, वह पर्याप्त कहा जाता है।

अपर्याप्त वह है, जो स्व-योग्य पर्याप्ति को पूर्ण नहीं कर पाया है।





यहाँ पर प्रत्येक शब्द के साथ बल लगा है। बल का अर्थ है, शक्ति-विशेष। छूने की शक्ति, चखने की शक्ति, सूँघने की शक्ति, देखने की शक्ति और सुनने की शक्ति। यह इन्द्रिय प्राण है।

विचार करने की शक्ति, बोलने की शक्ति, और चलने-फिरने आदि ज्ञारीरिक शक्ति। ये तीन योग रूप प्राण है।

जीव जिस शक्ति से बाहर की वायु को अन्दर खींचता है, और अन्दर की वायु को बाहर फेकता है, वह क्रमशः श्वास और उच्छ्वास है।

जिस शक्ति के अस्तित्व से जीव जीवित रहता है, और जिस के असद् भाव से जीव मर जाता है—वह आयुष्य प्राण है। दशो प्राणो में आयुष्य प्राण सब से मुख्य है। इसके अभाव में दूसरे प्राणों का कोई महत्त्व नहीं रहता।

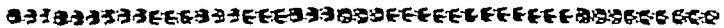
किस जीव में कितने प्राण हो सकते हैं? इसके समाधान में शास्त्र में कहा गया है, कि—

एकेन्द्रिय जीव में चार प्राण हैं—स्पर्शन इन्द्रिय, काय, श्वासो-च्छ्वास और आयुष्य।

द्वीन्द्रिय जीव में छह प्राण हैं—चार पूर्वोक्त तथा रसन-इन्द्रिय और वचन।

त्रीन्द्रिय जीव में सात प्राण हैं—छह पूर्वोक्त और घ्राणेन्द्रिय।

चतुरिन्द्रिय जीव में आठ प्राण हैं—सात पूर्वोक्त और चक्षु-रिन्द्रिय।



८

बौद्ध आठवाँ : योग पन्द्रह

चार मन के —

- १ सत्य मनो योग
- २ असत्य मनोयोग
- ३ मिश्र मनोयोग
- ४ व्यवहार मनोयोग

चार वचन के —

- १ सत्य वचन योग
- २ असत्य वचन योग
- ३ मिश्र वचन योग
- ४ व्यवहार वचन योग

सात काय के —

- १ औदारिक काय योग
- २ औदारिक-मिश्र काय योग
- ३ वैक्रिय काय योग



- ४ वैक्रिय-मिश्र काय योग
- ५ आहारक-काय योग
- ६ आहारक-मिश्र काय योग
- ७ कर्मण काय योग

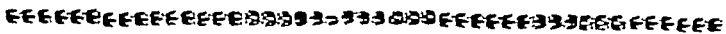
व्याख्या

८ भारतीय साहित्य में योग शब्द सुपरिचित एव बहु व्यापक है। सामान्य रूप में योग का अर्थ ध्यान तथा समाधि किया जाता है। 'योग-सूत्र' में चित्त की वृत्तियों के निरोध को योग कहा गया है।

परन्तु जैन शास्त्रानुसार, प्रस्तुत में योग शब्द का विशेष अर्थ लिया गया है। यहाँ पर मन, वचन और काय के व्यापार को योग कहा गया है। मन, वचन और काय वर्गणा के पुद्गलो की सहायता से, आत्म-प्रदेशी में होने वाले परिस्पन्द को Vibration कम्पन व हलन-चलन को योग कहा गया है।

मुख्य रूप में योग के तीन भेद हैं। विस्तार की अपेक्षा से उसी के पन्द्रह भेद कर दिये गए हैं।

मन दो प्रकार का है—भाव मन और द्रव्य मन। भाव मन को Subjective mind और द्रव्यमन को Objective mind कहते हैं। द्रव्य मन का सम्बन्ध Brain से है। और भाव मन का सम्बन्ध आत्मा से।



व्याख्या

आत्मा के ज्ञान रूप व्यापार को उपयोग कहते हैं। किसी भी वस्तु को सामान्य या विशेष रूप से जान लेना उपयोग है। उपयोग के दो भेद हैं—ज्ञान और दर्शन। पदार्थों के विशेष बोध को ज्ञान या साकारोपयोग कहते हैं। पदार्थों के विशेष धर्म, विशेष गुण और विशेष क्रिया का ज्ञान होना—साकारोपयोग है। पदार्थों के सामान्य बोध को दर्शन या निराकारोपयोग कहते हैं।

जैन दर्शन में वस्तु सामान्य-विशेषात्मक मानी है। जब चेतना वस्तु के विशेष धर्म को मुख्य रूप में और उस के सामान्य धर्म को गौण रूप में ग्रहण करती है, तो चेतना के उभ व्यापार को ज्ञानोपयोग कहा जाता है। परन्तु जब चेतना किसी भी वस्तु के सामान्य धर्म को मुख्य रूप में, और उसके विशेष धर्म को गौण रूप में ग्रहण करती है, तब उसे दर्शनोपयोग कहते हैं, ज्ञान साकार और दर्शन निराकार होता है।

मति ज्ञान—इन्द्रिय और मन की सहायता से होने वाला रूपी पदार्थों का ज्ञान। मन से अरूपी पदार्थों का भी परोक्ष ज्ञान किया जा सकता है।

श्रुत ज्ञान—जो ज्ञान श्रुतानुसारी है। जिस से शब्द और और अर्थ का सम्बन्ध जाना जाता है। जो मति ज्ञान के बाद होता है।

मति और श्रुत का परस्पर सम्बन्ध है। दोनों में कार्य कारण भाव है। मति ज्ञान कारण है और श्रुत ज्ञान कार्य है।-दोनों ज्ञान निमित्तावलम्बी होने से परोक्ष हैं।



अवधि ज्ञान—इन्द्रिय और मन की सहायता के विना आत्मा-द्वारा मर्यादा पूर्वक रूपी द्रव्य का ज्ञान ।

मनः पर्याय ज्ञान—इन्द्रिय और मन की सहायता के विना आत्मा द्वारा सजी जीवों के मनोगत भावों को जानने वाला ज्ञान ।

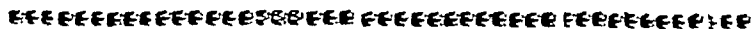
केवल ज्ञान—मूर्त, अमूर्त, सूक्ष्म, स्थूल आदि त्रिकाल-वर्ती समस्त पदार्थ और उन की सम्पूर्ण पर्यायों को एक साथ जानने वाला ज्ञान, अर्थात् सम्पूर्ण पदार्थ और उनकी सम्पूर्ण पर्यायों को विना किसी बाह्य साधन के माक्षात् आत्मा द्वारा एक साथ जान लेने वाला ज्ञान ।

अवधि आदि तीन ज्ञान प्रत्यक्ष है, अवधि और मन पर्याय विकल-अपूर्ण प्रत्यक्ष हैं, और केवल ज्ञान सकल-पूर्ण प्रत्यक्ष है ।

मिथ्यात्व-सहचरित मति, श्रुत और अवधि क्रम से मति अज्ञान, श्रुत अज्ञान, और अवधि अज्ञान कहे जाते हैं । यहाँ पर अज्ञान का अर्थ ज्ञान का अभाव नहीं, बल्कि कुत्सित ज्ञान सम्भूतना चाहिए । कुत्सित ज्ञान का अर्थ है, मिथ्या ज्ञान, विपरीत ज्ञान ।

चक्षुर् दर्शन—चक्षुर्दर्शनावरण कर्म के क्षयोपशम होने पर चक्षु द्वारा पदार्थों का जो सामान्य रूप से बोध होता है ।

अचक्षुर् दर्शन—अचक्षुर्दर्शनावरण कर्म के क्षयोपशम होने पर चक्षु को छोड़ कर शेष इन्द्रियों से और मन से पदार्थों का जो सामान्य रूप से बोध होता है ।



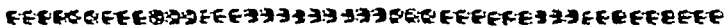
है। खान में जो सुवर्ण है, उस का मिट्टी के साथ अनादि सम्बन्ध होने पर भी विशेष शोध-क्रिया के द्वारा जब उस से मिट्टी हटा देते हैं, तब वह शुद्ध सुवर्ण हो जाता है। यही सिद्धान्त कर्म और आत्मा पर भी लागू पड़ता है। कर्म-सहित जीव अशुद्ध और कर्म रहित जीव शुद्ध होता है। साधना के द्वारा जीव शुद्ध, बुद्ध और मुक्त हो सकता है।

शास्त्र में मुख्य रूप से कर्म के दो भेद हैं—भाव कर्म और द्रव्य कर्म। राग, द्वेष और कषाय आदि भाव कर्म हैं। भावकर्म के निमित्त से कर्म वर्गणा के पुद्गलो की एक विशेष परिणति द्रव्य कर्म है। ऊपर जो कर्म के आठ भेद हैं, वे द्रव्य कर्म हैं।

ज्ञानावरण कर्म—आत्मा के ज्ञान गुण को आच्छादित करने वाला कर्म। जिस प्रकार आँख पर कपड़े की पट्टी लपेटने से वस्तुओं के देखने में रुकावट पड़ती है, उसी प्रकार ज्ञानावरण कर्म के प्रभाव से आत्मा को पदार्थों का विशेष बोध करने में रुकावट पड़ती है।

जैसे मघन बादलो से सूर्य के ढक जाने पर भी उसका प्रकाश उतना अवश्य रहता है, कि जिस से दिन-रात का भेद समझा जा सके। वैसे ही कैसा भी प्रगाढ ज्ञानावरण कर्म हो, उस के रहते हुए भी आत्मा में इतना ज्ञान तो अवश्य रहता है, कि जिस से वह जड पदार्थों से पृथक् किया जा सके।

दर्शनावरण कर्म—आत्मा की सामान्य बोधरूप दर्शन शक्ति को, आत्मा के दर्शन गुण को ढकने वाला कर्म। यह कर्म द्वार-पाल के समान है। जैसे द्वार पाल राजा के दर्शन करने में रुका-



वट डालता है, वैसे ही यह कर्म भी पदार्थों का सामान्य बोध करने में रुकावट डालता है

वेदनीय कर्म—जो अनुकूल और प्रतिकूल विषयों से उत्पन्न सुख और दुःख रूप में वेदन अर्थात् अनुभव किया जाय। यह कर्म मधु-लिप्त तलवार की धार की चाटने के समान है। चाटते समय क्षण भर को सुख, परन्तु बाद में दुःख होता है। वेदनीय कर्म की भी यही स्थिति है। वेदनीय कर्म का दुःख तो दुःखरूप है ही, किन्तु सुख भी अन्ततः दुःख रूप ही है।

मोहनीय कर्म—जो कर्म आत्मा को मोहित करता है, भले-बुरे के विवेक से शून्य बना देता है, जो सदाचार विमुख करता है, वह कर्म मोहनीय है। यह कर्म अन्य कर्मों से प्रबल कर्म है। यह मदिरा के मत्त होना है। जैसे मदिरा पीने वाला विवेक-विकल हो जाता है, वैसे ही मोहनीय के प्रभाव से जीव विवेक-शून्य हो जाता है। यह कर्म आत्मा के श्रद्धान एव चारित्र्य गुण का घात करता है।

आयुष् कर्म—जिस कर्म के रहते प्राणी नर, नारकादि रूप से जीता है, और पूरा होने पर मर जाता है। यह कर्म कारागार के समान है।

नाम कर्म—जिस कर्म के उदय से जीव कभी नारक, कभी तिर्यञ्च, कभी मनुष्य और कभी देव कहलाता है। अथवा जो कर्म जीव को एकेन्द्रिय आदि नानाविध पर्यायों में परिणत करता है। यह कर्म चित्रकार के समान माना गया है। जैसे चित्रकार नाना चित्र बनाता है, वैसे नाम कर्म भी जीव के नाना रूप बनाता है।

सम्यग् विद्या दृष्टि गुण स्थान—यह अज्ञान के सद्विद्य
 के अभाव में अवस्था है। इसमें विचार-दृष्टि नहीं हो पाती
 है। इसमें मन्द जीव तत्त्वों पर न एकत्र रीति करता है, न
 एकान्त अर्थात्।

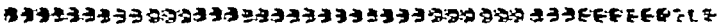
अविद्य-सम्यग्दृष्टि गुणस्थान—अविद्य, त्याग-रहित। त्याग
 नहीं है, सम्यग्दृष्टि जिसकी, वह अविद्य सम्यग्दृष्टि, उसका
 गुणस्थान, अविद्य सम्यग्दृष्टि गुणस्थान। यह त्याग-शून्य सम्यग्
 दृष्टि है, इसमें दृष्टि तो सम्यग् है, पर आचरण

अज्ञान-गुण स्थान—जिसकी विरति (विरति) पूर्ण न हो
 उमका गुणस्थान, देव विरत गुणस्थान। इसमें
 अज्ञान-रूप में, हिंसादि से विरति का भाव आजाता है।

अज्ञान-संयत गुण स्थान—प्रमाद-युक्त साधु के गुणस्थान को
 अज्ञान-संयत गुणस्थान कहते हैं। सर्व रूप से, पूर्ण रूप से
 अज्ञान आ जाता है। सर्व विरति आ जाता है।

अज्ञान-सयत गुण स्थान—अज्ञान-युक्त साधु के
 अज्ञान-सयत गुण स्थान कहते हैं। प्रमाद
 से आत्मा और भी अधिक विगुण आ जाता है।

निवृत्ति बादर सम्पराय गुणस्थान—
 और सम्पराय का अर्थ कषाय है।
 की अपेक्षा उक्त गुणस्थान में
 कारण इसे बादर सम्पराय कहते



अत प्रस्तुत गुण स्थान के सम समय-वर्ती समस्त जीवो के अर्ध्यवसाय भिन्न अर्थात् न्यूनाधिक शुद्धि वाले होते हैं ।

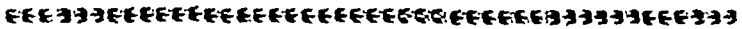
अनिवृत्ति वादर सम्पराय गुण स्थान—प्रस्तुत गुण स्थान मे भी वादर सम्पराय अर्थात् स्थूल कषाय का अस्तित्व रहता है । अत यह भी वादर-सम्पराय कहलाता है । पूर्ववर्ती अनिवृत्ति शब्द का अर्थ अभिन्नता है । अत. नवम गुणस्थान मे जो जीव समसमय-वर्ती होते है, उन सबके अर्ध्यवसाय एक समान अर्थात्, तुल्य शुद्धि वाले होते हैं ।

सूक्ष्म सम्पराय गुण स्थान—सूक्ष्म रूप मे सम्पराय कषाय (मात्र लोभ) है जिसमें वह सूक्ष्म सम्पराय गुण स्थान । इसमे, चार कषायो मे से केवल सूक्ष्म लोभ रह जाता है ।

उपशान्त मोह गुण स्थान—उपशान्त अर्थात् अन्तर्मुहूर्त के लिए शान्त हो गया है, मोह कर्म जिसमे, वह उपशान्त मोह, उसका गुणस्थान, उपशान्तमोह गुणस्थान । इसमें मोह (लोभ) का उपशम होता है, क्षय नहीं ।

क्षीण मोह गुण स्थान—क्षीण, अर्थात् समूल नष्ट हो गया है, मोह कर्म जिसका, वह क्षीण मोह, उसका गुण स्थान, क्षीण मोह गुण स्थान । इसमे मोह सर्वथा नष्ट हो जाता है ।

सयोगी केवली गुण स्थान—योग का अर्थ मन, वचन और काय का व्यापार है । सयोगी अर्थात् योग युक्त है जो केवली, वह सयोगी केवली, उसका गुण स्थान, सयोगी केवली गुणस्थान, इसमे आत्मा सर्वज्ञ और सर्व-दर्शी हो जाता है ।



व्याख्या

इन्द्रिय पाँच है, अतः मुख्यतया उनके विषय भी पाँच हैं— शब्द, वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श। विस्तार की अपेक्षा से इनके तेईस विषय हो जाते हैं। पाँच इन्द्रिय के विषय तेईस और विकार दो सौ चालीस होते हैं।

मसार के समस्त पदार्थ दो विभागों में विभक्त हैं—मूर्त और अमूर्त। जिसमें वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श हो, वह मूर्त, शेष सभी अमूर्त। मूर्त अर्थात् पौद्गलिक पदार्थ ही इन्द्रिय-ग्राह्य हो सकते हैं, अमूर्त नहीं,—जैसे आत्मा आदि।

प्रत्येक इन्द्रिय अपने विषय को ही ग्रहण करती है। दूसरे के विषय को नहीं। रूप को चक्षुष् ही ग्रहण करती है। घ्राण एव रसन आदि नहीं। सर्वत्र यही क्रम है।

विकार

पाँच इन्द्रियों के दो सौ चालीस विकार होते हैं और वे इस प्रकार समझने चाहिए—

श्रोत्र इन्द्रिय के तीन विषयों के १२ विकार—जीव शब्द, अजीव शब्द और मिश्र शब्द। तीन शुभ और तीन अशुभ। इन छह पर राग और छह पर द्वेष। ये १२ विकार हुए।

चक्षुष् इन्द्रिय के पाँच विषयों के ६० विकार—५ सचित्त, ५ अचित्त और ५ मिश्र। ये १५ शुभ और १५ अशुभ। इन ३० पर राग और ३० पर द्वेष। ये ६० विकार हुए।

घ्राण इन्द्रिय के दो विषयो के १२ विकार—२ सचित्त, २ अचित्त और २ मिश्र । इन छह पर राग और छह पर द्वेष । ये १० विकार हुए ।

रसन इन्द्रिय के पांच विषयो के ६० विकार—५ सचित्त, ५ अचित्त और ५ मिश्र । १५ शुभ और १५ अशुभ । ३० पर राग और ३० पर द्वेष । ये ६० विकार हुए ।

स्पर्शन इन्द्रिय के आठ विषयो के ९६ विकार—८ सचित्त, ८ अचित्त और ८ मिश्र । २४ शुभ और २४ अशुभ, इस प्रकार ४८ पर राग और ४८ पर द्वेष । ये ९६ विकार हुए ।

☆

१३

बोल तेरहवाँ : दश प्रकार का मिथ्यात्व

- १ जीव को अजीव समझना मिथ्यात्व
- २ अजीव को जीव समझना मिथ्यात्व
- ३ धर्म को अधर्म समझना मिथ्यात्व
- ४ अधर्म को धर्म समझना मिथ्यात्व
- ५ साधु को असाधु समझना मिथ्यात्व
- ६ असाधु को साधु समझना मिथ्यात्व
- ७ ससार-मार्ग को मोक्ष मार्ग समझना मिथ्यात्व
- ८ मोक्ष-मार्ग को ससार-मार्ग समझना मिथ्यात्व



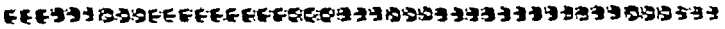
आने का द्वार है। सवर, आस्रव का निरोध है। एक देश से कर्मों का आत्मा से अलग होना निर्जरा है। बन्व, आत्मा और कर्म पुद्गल का परस्पर सम्बन्ध है। मोक्ष, सम्पूर्ण कर्मों का क्षय है।

जीव तत्त्व के चौदह भेद

- १ सूक्ष्म एकेन्द्रिय के दो भेद पर्याप्त और अपर्याप्त
- २ वादर एकेन्द्रिय के दो भेद पर्याप्त और अपर्याप्त
- ३ द्वीन्द्रिय के दो भेद पर्याप्त और अपर्याप्त
- ४ त्रीन्द्रिय के दो भेद पर्याप्त और अपर्याप्त
- ५ चतुरिन्द्रिय के दो भेद पर्याप्त और अपर्याप्त
- ६ असजी पञ्चेन्द्रिय के दो भेद पर्याप्त और अपर्याप्त
- ७ सजी पञ्चेन्द्रिय के दो भेद पर्याप्त और अपर्याप्त

व्याख्या

एकेन्द्रिय जीवों के दो भेद हैं—सूक्ष्म और वादर। व्यवहार दृष्टि से सूक्ष्म का अर्थ है—ग्रांथों से न देखने वाले जीव, और वादर का अर्थ है—स्थूल जीव। परन्तु शास्त्र की दृष्टि से जिन्हें सूक्ष्म नाम कर्म का उदय हो, वे सूक्ष्म और जिन्हें वादर नाम कर्म का उदय हो, वे वादर। वादर जीव के शरीर भी अलग-अलग नहीं देखे जाते। किन्तु वे समुदाय रूप में ही देखे जाते हैं। सूक्ष्म जीव मपूर्ण लोक व्यापी है। वादर लोक के एक देश में हैं।



अजीव तत्त्व के चौदह भेद

धर्मास्तिकाय के तीन भेद—

- १ स्कन्ध
- २ देश
- ३ प्रदेश

अधर्मास्तिकाय के तीन भेद—

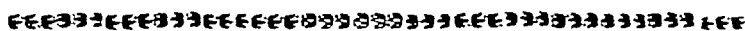
- १ स्कन्ध
- २ देश
- ३ प्रदेश

आकाशास्तिकाय के तीन भेद—

- १ स्कन्ध
 - २ देश
 - ३ प्रदेश
- १ दशर्वाँ काल

पुद्गलास्तिकाय के चार भेद—

- १ स्कन्ध
- २ देश



व्याख्या

पुण्य सुख-रूप होता है। पुण्य क्या है ? शुभ योग से बँधने वाला शुभ कर्म। पुण्य से आरोग्य, सम्पत्ति, रूप, कीर्ति, दीर्घ आयुष्य और सुपरिवार आदि सुख के साधन, जीव को उपलब्ध होते हैं।

यहाँ पुण्य के जो नव भेद किए गए हैं, वे वास्तव में पुण्य के भेद नहीं, किन्तु पुण्य के कारण हैं, जो नव विभाग में विभक्त किए गए हैं।

जीव इन नव कारणों से पुण्य का बन्ध कर सकता है। किसी दुःखित को अथवा सदाचारी व्यक्ति को स्थान, शय्या और वस्त्र देने से, शरीर से किसी की सेवा करने से, मधुर एवं हितकर वाणी बोलने से, शुभ विचारों का चिन्तन करने से और किसी पूज्य पुरुष को वन्दन करने से।

पुण्य मनुष्यगति, देवगति, पचेन्द्रिय जाति, शुभ वर्ण, शुभ गन्ध, शुभ रस, शुभ स्पर्श, सौभाग्य, सुस्वर, आदेय, यश आदि ४२ प्रकार से भोगा जाता है। पुण्य को बाँधते समय दुःख और भोगते समय सुख मिलता है। आत्म-विकास में पुण्य कथञ्चित् निमित्त है, अतः उपादेय है, परन्तु साधना की उच्च अवस्था में पुण्य भी हेय है।

पाप तत्त्व के अठारह भेद

- १ प्राणातिपात (हिंसा)
- २ मृषावाद (झूठ)
- ३ अदत्तादान (चोरी)
- ४ मैथुन (व्यभिचार)
- ५ परिग्रह (ममताभाव)
- ६ क्रोध
- ७ मान
- ८ माया
- ९ लोभ
- १० राग (मनोज्ञ वस्तु पर स्नेह)
- ११ द्वेष (अमनोज्ञ वस्तु पर द्वेष)
- १२ कलह (क्लेश, झगडा)
- १३ अभ्याख्यान (झूठा कलक लगाना)
- १४ पैशुन्य (दूसरे की चुगली करना)
- १५ पर-परिवाद (अवर्णवाद, निन्दा)
- १६ रति-अरति (शब्दादि मनोज्ञ पर प्रीति, अमनोज्ञ पर अप्रीति)



१७ माया मृषा (कपट-सहित मिथ्या भाषण)

१८ मिथ्यादर्शन शल्य (कुदेव, कुगुरु, और कुधर्म पर श्रद्धा)

व्याख्या

अशुभ योग से बाँधने वाले अशुभ कर्म को पाप कहते हैं। क्योंकि वह आत्मा को मलिन बनाता है। पाप के उदय से जीव को दुःख और पीडा मिलती है। पाप बाँधते समय सुखकर किन्तु भोगते समय दुःखकर प्रतीत होता है।

अठारह प्रकार से पाप बाधा जाता है, और ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अमानावेदनीय, मोहनीय, नरक गति, तिर्यचगति, अशुभ वर्ण आदि ८२ प्रकार से भोगा जाता है। पापस्थानों के सेवन से जीव भारी हो जाता है, और नीच गति में जाता है। इनके त्याग से जीव हल्का हो जाता है, और उच्च गति प्राप्त करता है। पाप हेय ही होता है, कभी उपादेय नहीं होता।

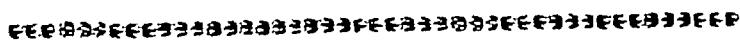
पाप तत्त्व के ये अठारह भेद पाप बन्ध के कारण हैं। कारण में कार्य का उपचार मानकर ही पापतत्त्व के भेद बताए गए हैं।

आस्रव तत्त्व के बीस भेद

पाँच अव्रत—

१ प्राणातिपात

२ मृषावाद



दो अयतना—

- १ भाण्डोपकरण अयतना से लेना, रखना
- २ सूचि कुशाग्र मात्र, अयतना से लेना, रखना ।

व्याख्या

जिन कारणों के द्वारा आत्मा में कर्म मल आता है, वे कारण आस्रव कहलाते हैं। जीव रूप तालाब में, कर्म-रज रूप जल, हिंसा, असत्य आदि आस्रव द्वार रूप नाली से आता रहता है। आस्रव से आत्मा मलिन बनता है क्योंकि आस्रव से कर्मों का निरन्तर सञ्चय होता रहता है।

हिंसा करना, भूठ बोलना, चोरी करना, व्यभिचार करना और परिग्रह का सचय करना—ये पाँच अव्रत रूप आस्रव है।

पाँच इन्द्रियो को यदि वश में नहीं रखा जाता, उनका निग्रह नहीं किया जाता, उन पर सयम का अकुश नहीं रखा जाता, यदि वे खुली छोड़ दी जाती हैं, तो वे कर्मबन्ध में निमित्त होने से आस्रवरूप हैं।

विपरीत श्रद्धान, अविरति, (असयम), प्रमाद, कपाय और अशुभ योग—ये पाचो आस्रव रूप हैं।

मन, वचन और काय की अशुभ प्रवृत्ति भी आस्रव रूप है। कर्म बन्धन का कारण है।

रजोहरण, पात्र आदि भाण्डोपकरण और कुश = वृण,

सूचि = सूई पाट आदि ग्रन्थ कोई भी वस्तु यदि अविवेक से ली जाती है और अविवेक से रखी जाती है, तो यह भी आस्रव है।

इन बीस कारणों से आत्मा कर्मों का सचय करता है, अतः ये आस्रव है। आस्रव ससार का कारण है। इससे ससार की वृद्धि होती है।

सवर के बीस भेद

पाच व्रत—

- १ प्राणातिपात विरमण
- २ मृपावाद विरमण
- ३ अदत्तादान विरमण
- ४ अब्रह्मचर्य विरमण
- ५ परिग्रह विरमण

पांच इन्द्रिय—

- १ श्रोत्रेन्द्रिय निग्रह
- २ चक्षुरिन्द्रिय निग्रह
- ३ घ्राणेन्द्रिय निग्रह
- ४ रसनेन्द्रिय निग्रह
- ५ स्पर्शनेन्द्रिय निग्रह



पाँच सवर—

- १ सम्यक्त्व सवर
- २ व्रत सवर
- ३ अप्रमाद सवर
- ४ अकपाय सवर
- ५ शुभयोग सवर

तीन योग—

- १ मनो निग्रह
- २ वचन निग्रह
- ३ काय निग्रह

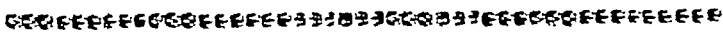
दो यतना—

- १ भाण्डोपकरण, यतना से लेना, रखना ।
- २ मूचि कुश तना लेना,

व्याख्या

आस्रव का निरोध सवर है ।
 है । सवर का अर्थ है, संवरण आ
 आस्रव को रोका जाता है, वे सवर

जीव रूप तालाव में, कर्म-रज
 रूप डाट के द्वारा रोकना, उसे सव



शुद्ध एव निर्मल बनता है। क्योंकि सवर की साधना से कर्म मल आत्मा में नहीं आ पाता।

हिंसा से विरति, अमृत्य से विरति, चोरी से विरति, अब्रह्मचर्य से विरति और परिग्रह से विरति—ये पाँच व्रत रूप सवर हैं। सवर धर्म का कारण है।

पाँच इन्द्रियो का निग्रह करना, उनकी अशुभ प्रवृत्ति को रोकना—यह पाँच इन्द्रियो का निरोधरूप सवर है। निगृहीत इन्द्रिय सवररूप है।

यथार्थ श्रद्धान, विरति (व्रत), अप्रमाद, अकपाय और शुभ योग—ये पाँच सवर हैं। क्योंकि इनसे आत्मा की शुद्धि होती है।

मनोनिरोध, वचन-निरोध और काय-सयम—ये तीनों भी सवर रूप हैं। इन तीनों योगों का शुभत्व सवर है।

यदि तत्त्व-दृष्टि से देखा जाए, तो योग मात्र आस्रव है। भले ही वह शुभ हो, या अशुभ। शुभ योग पुण्यास्रव है और अशुभ योग पापास्रव। यहाँ शुभ योग को जो संवर कहा है, वह अशुभ से निवृत्ति-रूप है। अतः शुभ की शुद्धांश में लक्षणा है।

रजोहरण, पात्र आदि भण्डोपकरण तथा सूई आदि अन्य किसी भी वस्तु को यतना से लेना और यतना से रखना—यह भी सवर है।

इन बीस कारणों से आत्मा आस्रव को रोकता है। अतः ये संवर हैं। सवर मोक्ष का कारण हैं। इसकी शुद्ध साधना से ससार के बन्धन कट जाते हैं।



निर्जरा दो प्रकार की है—सकाम और अकाम । सवर-पूर्वक निर्जरा सकाम है, और विना विवेक के, विना समय के जो कष्ट सहन किया जाता है, वह अकाम निर्जरा है ।

बद्ध कर्मों का क्षय तप से होता है । अतः निर्जरा की व्याख्या करते हुए प्रस्तुत बोल में अनशन आदि छह प्रकार का बाह्य तप और प्रायश्चित्त आदि छह प्रकार का आभ्यन्तर तप बताया गया है । यह तप कर्म-निर्जरा का हेतु है, कारण है । कारण से कार्य का उपचार करने से यहाँ पर तप को निर्जरा कहा गया है ।

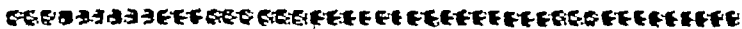
कर्म परमाणुओं का आत्मा से एक देश से दूर हो जाना निर्जरा है, और सर्वथा कर्मों का क्षय हो जाना मोक्ष है । देश मुक्ति निर्जरा और सर्व-मुक्ति मोक्ष है ।

बन्ध तत्त्व के चार भेद

- १ प्रकृति बन्ध
- २ स्थिति बन्ध
- ३ अनुभाग बन्ध
- ४ प्रदेश बन्ध

व्याख्या

कर्म-वर्गणा और आत्मा का अन्योन्यानुप्रवेश रूप जो परस्पर सम्बन्ध है, वह बन्ध कहा जाता है । कपाय और योग से जीव कर्म-पुद्गलो को ग्रहण करता है । नीर और क्षीर की तरह अथवा अग्नि और लौह पिण्ड की तरह कर्म-पुद्गल और आत्म-



प्रदेशो का जो एकीभाव है, उसे बन्ध कहते हैं। जैसे कोई व्यक्ति शरीर पर तेल लगाकर धूल में लेटता है, तो धूल उसके शरीर के चिपक जाती है। इसी प्रकार कषाय और योग से आत्म-प्रवेश में जब कम्पन होता है, तब आत्मा के साथ कर्म का बन्ध होता है। बन्ध तत्त्व के चार भेद हैं—

प्रकृति बन्ध—जीव के द्वारा ग्रहण किए हुए कर्म पुद्गल में ज्ञानावरणादि रूप भिन्न-भिन्न स्वभाव का अर्थात् शक्ति का पैदा होना।

स्थिति बन्ध—जीव के द्वारा ग्रहण किए हुए कर्म पुद्गल में श्रमुक काल तक अपने स्वभाव का परिव्याग न करते हुए जीव के साथ लगे रहने की काल मर्यादा।

अनुभाग बन्ध—जीव के द्वारा ग्रहण किए हुए कर्म-पुद्गल में तब एव मन्द फल देने की शक्ति। इसको अनुभाव बन्ध और रस बन्ध भी कहते हैं।

प्रदेश बन्ध—जीव के द्वारा ग्रहण किए हुए कर्म - पुद्गल के परमाणुओं का कम या अधिक होना अर्थात् जीव के साथ न्यूनाधिक परमाणु वाले कर्म-स्कन्ध का सम्बन्ध होना।

इन चार बन्धों में से प्रकृति बन्ध और प्रदेश बन्ध योग से होता है, और स्थिति-बन्ध तथा अनुभाग बन्ध कषाय से होता है।

कर्म बन्ध के पाँच हेतु हैं— मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग। परन्तु मुख्य दो हैं—कषाय और योग।

मोक्ष तत्त्व के चार भेद

- | | |
|----------------|------------------|
| १ सम्यग् ज्ञान | ३ सम्यक् चारित्र |
| २ सम्यग् दर्शन | ४ सम्यक् तप |

व्याख्या

नव तत्त्वो मे यह अन्तिम तत्त्व है। संवर और निर्जरा की साधना से आत्मा मोक्ष को प्राप्त कर सकता है।

बन्ध और बन्ध के कारणों का जब अभाव हो जाता है, और जब आत्म-विकास पूर्ण हो जाता है, तब आत्मा की उस सर्वथा और सर्वदा शुद्ध स्थिति को मोक्ष कहा जाता है। आत्म-गुणों का पूर्ण विकास ही वस्तुतः मोक्ष है।

मोक्ष, मुक्ति और निर्वाण—एकार्थक शब्द हैं। कर्म-बद्ध आत्मा का कर्म-मुक्त हो जाना—यह मोक्ष है। मोक्ष आत्मा को एक पूर्ण अखण्ड शुद्ध अवस्था है। जहाँ पूर्णता होती है, वहाँ विभिन्न प्रकार के भेद एव प्रकार नहीं होते। इसीलिए प्रस्तुत में मोक्ष तत्त्व के भेद बताने हुए उसकी प्राप्ति के चार साधन बताए गए हैं।

इस प्रकार मोक्ष प्राप्ति के उपर्युक्त चार साधन शास्त्र में कहे गए हैं—सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक् चारित्र और विवेक पूर्वक तप। जीव इन साधनों से मोक्ष प्राप्त कर सकता है।

जीव का स्वभाव ऊर्ध्व गमन है। वह जो अधोगमन और तिर्यग् गमन करता है, उसमें जीव के कर्म कारण हैं। जैसे लेप-सहित तुम्बा जल में नीचे बैठ जाना है, परन्तु उस पर से मिट्टी



का लेप हट जाने से वही तुम्बा ऊपर अर्थात् जल की सतह पर आ जाता है। यही स्थिति आत्मा की भी है। कर्म सहित आत्मा नीचे अघोगति में जाता है, और कर्म-रहित होने पर वही आत्मा अपनी सहज स्वभाव गति से मोक्ष पा लेता है।

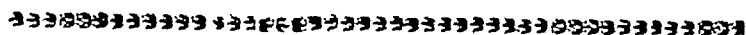
एक बार जब आत्मा मुक्त हो जाता है, तो फिर वह कभी संसार में नहीं आता। क्योंकि मुक्त आत्मा में संसार का कारण ही नहीं रहता। जैसे दग्ध बीज को कितना भी पानी दिया जाए, कितनी भी उर्वर भूमि में बोया जाए, पर वह कभी अकुरित नहीं हो सकता, वैसे ही जिस आत्मा में से बन्ध और बन्ध के कारणों का अभाव हो गया है, जो मुक्त हो गया है, वह फिर कभी संसार में नहीं आता।

जिन जीवों में मोक्ष पाने की योग्यता है, वे ही मोक्ष प्राप्त करते हैं, उनको भव्य कहते हैं। जिन जीवों में मोक्ष पाने की योग्यता नहीं, वे अभव्य हैं।

नव तत्त्वों में मुख्य तत्त्व दो हैं—जीव और अजीव। शेष सभी तत्त्व जीव और अजीव की पर्याय-विशेष ही हैं। उनका अपना पदार्थ रूप से स्वतन्त्र कोई अस्तित्व नहीं।

जिसमें चेतना है, वह जीव है, और जिसमें चेतना नहीं, वह अजीव है। ये दोनों स्वतन्त्र तत्त्व हैं।

पुण्य और पाप का समावेश अजीव तत्त्व में ही जाता है। क्योंकि पुण्य और पाप पुद्गल रूप हैं। पुण्य शुभ पुद्गल और पाप अशुभ पुद्गल हैं।



१५

बोल पन्द्रहवाँ : आत्मा आठ

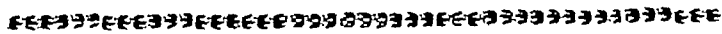
१ द्रव्य आत्मा	५ ज्ञान आत्मा
२ कषाय आत्मा	६ दर्शन आत्मा
३ योग आत्मा	७ चारित्र आत्मा
४ उपयोग आत्मा	८ वीर्य आत्मा

व्याख्या

आत्मा एक शाश्वत तत्त्व है। वह अतीत में भी था, वर्तमान में भी है, और भविष्य में भी रहेगा। उसकी न उत्पत्ति है, और न उसका विनाश। फिर भी ऐसा नहीं कहा जा सकता, कि उसमें किसी प्रकार का परिवर्तन होता ही नहीं। द्रव्य से नित्य होकर भी आत्मा पर्याय से अनित्य है, परिवर्तनशील है। जीव के परिणामों का कोई अन्त नहीं है। प्रस्तुत बोल में मुख्यतः आत्माओं की आठ स्थिति का वर्णन है।

द्रव्य आत्मा—आत्मा असंख्यान प्रदेशों का समुदाय है। आत्मा अखण्ड है, वह कोई अमख्य प्रदेशों में मयुक्त रूप में निहित हुआ है। प्रदेश कल्पनामात्र बुद्धि-परिकल्पित है। ये प्रदेशों से पृथक्तया विभाजित नहीं किए जा सकते।

कषाय आत्मा—कषाय चार हैं—कषाय युक्त आत्मा को कषाय आ



तीन विकलेन्द्रिय के तीन दण्डक—

- १ द्वीन्द्रिय
- २ त्रीन्द्रिय
- ३ चतुरिन्द्रिय

अन्तिम पांच दण्डक—

- १ तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रिय का एक दण्डक
- १ मनुष्य का एक दण्डक
- १ व्यन्तर देव का एक दण्डक
- १ ज्योतिष देव का एक दण्डक
- १ वैमानिक देव का एक दण्डक

व्याख्या

जीव अपनी शुभ और अशुभ प्रवृत्ति के कारण शुभाशुभ कर्मों का सचय करता रहता है । फिर उन शुभ एवं अशुभ कर्मों का फल भोगने के लिए चार गतियों में परिभ्रमण करता है । अतः जहाँ जीव स्वकृत कर्मों का फल भोगता है, उसे दण्ड कहते हैं । अर्थात् कर्म फल या दण्ड भोगने के स्थान को इस बोल में २४ भागों में विभक्त करके उन स्थानों का नाम दण्डक रख दिया गया है ।

नरक गति का दण्डक एक, तिर्यञ्च गति के नव, मनुष्यगति का एक, और देवगति के तेरह । इस प्रकार सब मिलाकर चौबीस दण्डक होते हैं ।





१७

बोल सतरहवाँ : लेश्या छह

१	कृष्ण लेश्या	४	तेजो लेश्या
२	नील लेश्या	५	पद्म लेश्या
३	कापोत लेश्या	६	शुक्ल लेश्या

व्याख्या

जीव के शुभाशुभ परिणाम को लेश्या कहते हैं। अथवा जिस परिणाम से कर्मों का आत्मा के साथ सम्बन्ध हो, उसे लेश्या कहते हैं। लेश्या के दो भेद हैं - भाव और द्रव्य। भाव लेश्या विचार रूप और द्रव्य लेश्या पुद्गल रूप होती है।

अथवा लेश्या के दो भेद हैं - धर्म लेश्या और अधर्म लेश्या। पहले को तीन अधर्म लेश्या और अगली तीन धर्म लेश्या। इनको अशुभ लेश्या और शुभ लेश्या भी कहते हैं।

कृष्ण लेश्या—

अतिरौद्र. सदा क्रोधी, मत्सरी धर्म-वर्जितः।
निर्दयी वैर-सयुक्त, कृष्ण-लेश्याऽधिको नर ॥

कृष्ण लेश्या वाले जीव के विचार अत्यन्त क्रूर होते हैं, वह क्रोधी होता है, वह ईर्ष्यालु होता है, उसका जीवन धर्म-शून्य होता है. वह दया रहित होता है, और उसके मन में सदा वैर-विरोध की भावना रहती है।



ध्यान चार प्रकार का है। पहले दो ससार के कारण हैं। अत वे हेय हैं, त्याज्य है। अन्त के दो मोक्ष के कारण हैं। अत वे उपादेय हैं, ग्रहण करने योग्य हैं।

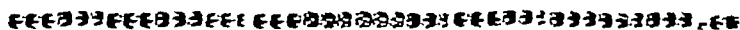
ध्यान, ध्याता और ध्येय—इसको त्रिपुटी कहते हैं। ध्यान करने वाला ध्याता होता है। ध्येय अर्थात् जिसका ध्यान किया जाए, जिसका चिन्तन किया जाए। ध्याता ध्यान के द्वारा ध्येय को प्राप्त करने का प्रयास करता है। इसको ध्यान की साधना कहते हैं।

ध्यान के दो भेद हैं—अशुभ और शुभ। पहले के दो ध्यान अशुभ हैं, पिछले दो शुभ हैं।

आर्त ध्यान—मनोज्ञ एव प्रिय वस्तु के वियोग में और अमनोज्ञ एवं अप्रिय वस्तु के संयोग में, चित्त में जो एक प्रकार की अनवरत एकाग्र चिन्तना होती है, उसको आर्तध्यान कहते हैं।

रौद्र ध्यान—हिंसा में, असत्य में, चोरी में और धन आदि के ममत्वभाव में, मन को एकाग्र करना, मन को जोड़ना, रौद्र ध्यान है। इसमें परिणाम अत्यन्त क्रूर होते हैं। इसमें, जीव के रुद्र अर्थात् भयंकर एव निर्दय भाव रहते हैं, अत इस को रौद्र ध्यान कहते हैं।

धर्म ध्यान—जिसमें श्रुत और चारित्र्य रूप धर्म का चिन्तन किया जाता है, उसे धर्म ध्यान कहते हैं। सूत्रार्थ का चिन्तन करना, व्रतों का विचार करना, तथा ससार की असारता का मनन करना—यह धर्म ध्यान है।



कहलाता है, और द्रव्य का क्रमभावी वर्म पर्याय कहलाता है। द्रव्य, गुण और पर्याय तीनों परस्पर सम्बद्ध हैं। द्रव्य के विना गुण और पर्याय नहीं, और गुण एव पर्याय के विना द्रव्य नहीं। गुण नित्य होता है, और पर्याय क्षणिक।

चेतना-शून्य तत्त्व को अजीव कहते हैं। अजीव के पाँच भेद हैं—धर्म, अधर्म, आकाश, पुद्गल और काल।

धर्म—गति-शील तत्त्वों की गति में सहायक जो तत्त्व, वह धर्म है। गति-शक्ति जीव और पुद्गल की अपनी है, परन्तु धर्म उसमें निमित्त कारण, सहकारी कारण बन जाता है। धर्म के विना जीव और पुद्गल स्वभावतः गति-शील होते हुए भी गति नहीं कर सकते। जैसे मछली में तैरने की शक्ति होने पर भी वह जल के विना नहीं तैर सकती।

अधर्म—स्थितिशील तत्त्वों की स्थिति में सहायक जो तत्त्व, वह अधर्म है। जीव और पुद्गल दोनों में स्थित होने का अपना स्वभाव है, पर उसमें निमित्त अधर्म है। जैसे पथिक के लिए वृक्ष की छाया। ठहरता तो पथिक स्वयं ही है, परन्तु छाया उसमें निमित्त कारण, सहकारी कारण बन जाती है। ठीक इसी प्रकार जीव एवं पुद्गल में ठहरने का स्वभाव है, परन्तु अधर्म उसमें निमित्त है। विना इसके कोई भी पदार्थ स्थिर नहीं हो सकता।

आकाश—जो अवकाश देता है, आश्रय देता है, वह आकाश है। आकाश सबका आधार है, शेष सभी द्रव्य आधेय हैं। व्यवहार दृष्टि से त्रम एव स्थावर जीवों का आधार पृथ्वी, पृथ्वी का आधार जल, जल का आधार वायु और वायु का आधार आकाश है, आकाश का अन्य कोई आधार नहीं। वह आप ही अपना आधार है।

क्योंकि उससे बड़ा कोई पदार्थ नहीं। तत्त्वत आकाश ही पृथ्वी जल, वायु, आदि सभी जीव-अजीव को अपने में अवकाश देता है, आश्रय देता है, जैसे दूध से भरे कटोरे में बतारा। जिस प्रकार दूध में बतारा समा जाता है, वैसे ही सब पदार्थ आकाश में समाये हुए हैं।

आकाश के दो भेद हैं—लोकाकाश और अलोकाकाश। जहाँ तक घर्म और अघर्म आदि हैं, वह लोकाकाश, शेष अलोकाकाश।

काल—काल अर्थात् समय। जो पुरानी वस्तु को नयी और नयी को पुरानी करता है, वह काल है। समय, पल, घड़ी, दिन और रात—ये सब काल के काण्ड हैं। पदार्थों की जो प्रतिक्षण पर्याय बदल रही है, उसका निमित्त अर्थात् महकारी कारण काल है।

जीव—चेतनामय तत्त्व जीव है। उपयोग जीव का लक्षण है। यह लक्षण ससारी जीव और मुक्त जीव सभी में घटित होता है। जीव कभी उपयोग—शून्य नहीं हो सकता। जीव के मुख्य रूप में दो भेद हैं—ससारी और मुक्त। समग्र चैतन्य तत्त्व का इन दो भेदों में समावेश हो जाता है।

पुद्गल—जिसमें पूरण, अर्थात् मिलन और गलन अर्थात् पृथक् भवन का स्वभाव है, वह पुद्गल है। जो मिलता है, विच्छिन्नता है, वह पुद्गल है। जिसमें वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श—ये चार गुण हों, वह पुद्गल है। 'पुद्' और 'गल्' इन दो धातुओं के संयोग से पुद्गल शब्द बना है। जिसका अर्थ है सश्लेष और विश्लेष। ईंट, पत्थर, लकड़ी, मिट्टी आदि—ये सब पुद्गल हैं।

इन षड् द्रव्यों में एक काल को छोड़ कर शेष सभी द्रव्य अस्ति-काय-रूप है। अस्ति अर्थात् प्रदेश, काय अर्थात् समूह।



इसी प्रकार वह श्रावक स्थूल असत्य को, स्थूल स्तेय को, स्थूल अन्नह्य को और स्थूल परिग्रह को छोड़ सकता है; सूक्ष्म का त्याग नहीं कर सकता। क्योंकि वैसा करने पर उसका गृहस्थ जीवन चल मकना कठिन है। चतुर्थ व्रत के रूप में यदि वह पुरुष है, तो स्व-दार-सन्तोष-व्रत और यदि वह नारी है, तो स्व-पति-मन्तोष-व्रत ग्रहण करता है। पञ्चम व्रत के रूप में वह-अपने परिग्रह का परिमाण निर्धारित करता है।

तीन गुणव्रत—गुण-व्रत का अर्थ है—अहिंसा आदि पाँच मूल व्रतों को पुष्ट करने वाले, और उनमें अभिवृद्धि करने वाले नियम।

चार दिशा, चार विदिशा और ऊर्ध्वदिशा तथा अधोदिशा— इन दश दिशाओं का परिमाण निर्धारित करना, ताकि सीमा से बाहर, मर्यादा से बाहर गमन और आगमन न हो। यह दिशा परिमाण गुण व्रत है, इसमें क्षेत्र की मर्यादा की जाती है।

उपभोग अर्थात् एक बार भोग के काम में आने वाली खाने-पीने आदि की वस्तु और परिभोग अर्थात् बार-बार भोग के काम में आने वाली पहनने-ओढ़ने आदि की वस्तु—इनकी मर्यादा करना। जैसे आनन्द श्रावक ने छब्बीस बोल की मर्यादा की थी। यह उपभोग परिभोग परिमाण गुण व्रत है।

श्रावक प्रयोजन के लिए तो हिंसा आदि करता है, परन्तु विना प्रयोजन के हिंसा आदि का उसको परित्याग होता है। अतः अनर्थदण्ड-का, अर्थात् विना प्रयोजन के हिंसा आदि का त्याग, अनर्थदण्ड-विरमण गुणव्रत है।

चार शिक्षा व्रत—

शिक्षा का अर्थ है, साधु-जीवन-का अभ्यास। धीरे-धीरे

साधु-जीवन योग्य साधना की ओर अग्रसर होना, इस शिक्षा व्रत का मुख्य उद्देश्य है।

नित्य प्रति उभय काल में सामायिक करना, सामायिक शिक्षा व्रत है। दिशाव्रत में जो क्षेत्र-मर्यादा की थी, उसको और अधिक सीमित करना, देशावकाशिक शिक्षा व्रत है। पर्व दिवसों में पौषघ व्रत एवं दयाव्रत करना पौषघ शिक्षा व्रत है। और द्वार पर आए साधु, श्रावक, सम्यग्दृष्टि आदि अतिथि को सम्मान पूर्वक यथाशक्ति दान देना, अतिथि सत्रिभाग शिक्षा व्रत है। ये चार शिक्षा व्रत हैं। इस प्रकार श्रावक के चारह व्रत हैं।



२३

बोल तेईसवाँ : साधु के पाँच महाव्रत

- १ अहिंसा महाव्रत
- २ सत्य महाव्रत
- ३ अस्तेय महाव्रत
- ४ ब्रह्मचर्य महाव्रत
- ५ अपरिग्रह महाव्रत

व्याख्या

साधु को शास्त्र में 'श्रमण' कहा गया है। अतः साधु-धर्म को 'श्रमण-धर्म' कहना उचित ही है। श्रावक धर्म से आगे की कोटि श्रमण-धर्म की है। साधु होने के लिए केवल बाह्य वेप बदल



लेना ही पर्याप्त नहीं है, बल्कि उसके लिए जीवन को ही बदलना पड़ता है। वाने के साथ वान भी बदलनी पड़ती है, तभी सच्ची साधुता प्राप्त होती है।

संसार में पाँच महापाप हैं—हिंसा, असत्य, स्तेय (चोरी), अन्नह्यचर्य और परिग्रह (आसक्ति)।

साधु इन पाँचों महापापों का त्याग तीन करण और तीन योग से करता है। करण का अर्थ है—कृत्वा, कारित और अनुमत। अर्थात् करना, कराना और अनुमोदन करना। योग का अर्थ है—मन, वचन और काय।

साधु इन पाँचों महापापों को न स्वर्य करता है, न दूसरो से करवाता है, और न करने वालों का अनुमोदन करता है—मन से, वचन से और काय से। अतः साधु के इन व्रतों को शास्त्र में महाव्रत कहा गया है।

महाव्रत का अर्थ है—बड़ी प्रतिज्ञा, महान प्रतिज्ञा, पूर्ण प्रतिज्ञा। उसमें किसी भी प्रकार की स्थूल एवं सूक्ष्म की छूट नहीं होती।

साधु पूर्ण अहिंसा, पूर्ण सत्य, पूर्ण अस्तेय, पूर्ण अन्नह्यचर्य और पूर्ण अपरिग्रह का परिपालन करता है। अतः उसकी प्रतिज्ञा को महाव्रत कहना उचित ही है।



- ६ कराऊँ नहीं वचन से, काय से
 ७ अनुमोदूँ नहीं मन से, वचन से
 ८ अनुमोदूँ नहीं मन से, काय से
 ९ अनुमोदूँ नहीं वचन से, काय से

अक १३ भग तीन—एक करण, तीन योग से कथन—

- १ करूँ नहीं मन से, वचन से, काय से
 २ कराऊँ नहीं मन से, वचन से, काय से
 ३ अनुमोदूँ नहीं मन से, वचन से काय से

अक २१ भग नव—दो करण, एक योग से कथन—

- १ करूँ नहीं, कराऊँ नहीं, मन से
 २ करूँ नहीं, कराऊँ नहीं, वचन से
 ३ करूँ नहीं, कराऊँ नहीं, काय से
 ४ करूँ नहीं, अनुमोदूँ नहीं, मन से
 ५ करूँ नहीं, अनुमोदूँ नहीं, वचन से
 ६ करूँ नहीं, अनुमोदूँ नहीं, काय से
 ७ कराऊँ नहीं, अनुमोदूँ नहीं, मन से
 ८ कराऊँ नहीं, अनुमोदूँ नहीं, वचन से
 ९ कराऊँ नहीं, अनुमोदूँ नहीं, काय से

२५

बौल पच्चीसवाँ : चारित्र पाँच

- १ सामायिक चारित्र
- २ छेदोपस्थापन चारित्र
- ३ परिहार विशुद्धि चारित्र
- ४ सूक्ष्म-सम्पराय चारित्र
- ५ यथाख्यात चारित्र

व्याख्या

आत्मा को निज स्वरूप में स्थित रखने का प्रयत्न चारित्र है। चारित्र, विरति, संयम, और सवर ये सब एकार्यक शब्द हैं। चारित्र का अर्थ है—अशुभ से निवृत्ति और शुभ में प्रवृत्ति। तत्त्वतः आस्रव के निरोध को चारित्र कहा जाता है।

शास्त्रीय भाषा में चारित्र मोहनीय कर्म के क्षय से, उपशम से और क्षयोपशम से होने वाले विरति परिणाम को चारित्र कहते हैं। अथवा आत्मा का सावद्य योग से निवृत्त होकर निरवद्य योग में प्रवृत्त होना भी चारित्र कहा जाता है। चारित्र के सामायिक आदि पाँच भेद हैं।

सामायिक चारित्र—सामायिक अर्थात् सम-भाव। सम भाव की साधना को सामायिक चारित्र कहते हैं। अथवा सावद्य